

# जियंग-संजया का थोकड़ा



प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

# नियंत्रा-संज्ञा का थोकड़ा

संकलन-संपादन

धर्मचन्द जैन

रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर



प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक :: अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक :

## नियंथा-संजया का थोकड़ा

अन्य प्राप्ति स्थल :

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर,  
बापू बाजार, जयपुर-3 (राज.)

फोन : 0141-2575997

फैक्स : 0141-4068798

प्रथम संस्करण : 2016

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **10.00/-** (दस रुपये)

लेज़र टाइपसैटिंग

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक :

प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

- श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ  
घोड़ों का चौक, जोधपुर-342001  
(राजस्थान)  
फोन : 0291-2624891
- Shri Navratanmal ji Bhansali**  
C/o. Mahesh Electricals,  
14/5, B.V.K. Ayangar Road,  
**BANGALURU-560053**  
(Karnataka)  
Ph. : 080-22265957  
Mob. : 09844158943
- Shri B. Budhmal ji Bohra**  
211, Akashganga Apartment,  
19 Flowers Road, Kilpauk,  
**CHEENNAI-600010** (TND)  
Ph. : 044-26425093  
Mob. : 09444235065
- श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा  
“रत्नसागर”, कलेक्टर बंगला रोड़,  
चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,  
**जलगाँव-425001** (महा.)  
फोन : 0257-2223223
- श्री दिनेश जी जैन  
1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,  
दिल्ली-110006 (दिल्ली)  
फोन : 011-23919370  
मो. 09953723403

## प्रकाशकीय

थोकड़ों का जीवन में अत्यधिक महत्व है। ये हमारे आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक हैं। इनके अध्ययन से हमें आगम के अनेक गूढ़ रहस्यों व सार तत्त्वों का परिचय प्राप्त होता है, मन सावद्य योग से निवृत्त होता है और जिनेश्वर द्वारा प्रख्यात धर्म पर श्रद्धा बढ़ती है।

तत्त्व ज्ञान हेतु यद्यपि 32 आगमों में विशद् विवेचन दिया गया है परन्तु आगमों को पढ़कर उसके अर्थ एवं मर्म को हृदयंगम करना अधिकतर लोगों के लिए बहुत कठिन होता है। अतः हमारे पूर्वाचार्यों ने अनन्त महती कृपा करके जिज्ञासु एवं मुमुक्षु बन्धुओं के लिए आगम के सार रूप में सरल सुबोध भाषा में थोकड़ों का निर्माण किया।

इस पुस्तक के प्रकाशन, मुद्रण हेतु बैंगलोर निवासी श्री प्रेमचन्द्रजी भण्डारी एवं परिवार का महत्वपूर्ण अर्थसहयोग प्राप्त हुआ है।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा थोकड़ों की विभिन्न पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में नियंठा एवं संजया ये दोनों थोकड़े 36-36 द्वारों के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि अनेक संस्थाओं ने ये थोकड़े प्रकाशित किये हैं, किंतु उनमें द्वारों का बहुत ही कम विवेचन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की यह विशेषता है कि इनमें प्रत्येक द्वार से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी देकर विषय-वस्तु को सरल तरीके से समझाने का सुंदर प्रयास किया है, इसके लिए अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड के रजिस्ट्रार एवं आध्यात्मिक शिक्षा समिति के वरिष्ठ प्रशिक्षक श्री धर्मचन्द्रजी जैन-जोधपुर का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। पुस्तक की लेज़र टाइप सैटिंग में मण्डल कार्यालय में कार्यरत श्री प्रह्लाद नारायणजी लखेरा का एवं प्रूफ संशोधन में आध्यात्मिक शिक्षा समिति में सेवारत श्री राकेशजी जैन का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है इन सबके प्रति मण्डल विशेष रूप से हार्दिक आभार प्रकट करता है।

पुस्तक की सामग्री को तैयार करने में और भी जिन-जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ, उन सबके प्रति भी मण्डल आभारी है।

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से सुन्न जिज्ञासु पाठकों को जैनागमों के महत्वपूर्ण तथ्यों को समझने में सरलता होगी। थोकड़े के अध्ययन से पाठकगण अपना जीवन उन्नत व परिष्कृत कर मुक्तिगामी बनें, इसी मंगल कामना के साथ।

:: निवेदक ::

पारसचंद हीरावत पदमचंद कोठारी प्रमोदचंद मोहनोत विनयचंद डागा

अध्यक्ष

कार्याध्यक्ष

कार्याध्यक्ष

मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

## नवकार महामन्त्र

णमो अरिहंनाणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयदियाणं

णमो उवज्ज्ञायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥



## नियंता (निर्ग्रन्थ) का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 में नियंता (निर्ग्रन्थ) का थोकड़ा चलता है, सो कहते हैं—

36 द्वार की संग्रहणी गाथाएँ—

पन्नवण वेय रागे, कप्प चरित्त पडिसेवणा णाणो।

तित्थे लिङ्गं सरीरे, खेते काल गइ संजम पिगासे॥1॥

जोगुवओग कसाए लेस्सा, परिणाम बंध वेदे य।

कम्मोदीरण उवसंपजहण्ण, सण्णा य आहारे॥2॥

भव आगरिसे कालंतरे य, समुन्धाय खेत्त पुसणा य।

भावे परिमाणे वि य, अप्पाबहुयं पियंठा णं॥3॥

1. प्रज्ञापन, 2. वेद, 3. राग, 4. कल्प, 5. चारित्र, 6. प्रतिसेवना,
7. ज्ञान, 8. तीर्थ, 9. लिङ्ग, 10. शरीर, 11. क्षेत्र, 12. काल,
13. गति, 14. संयम, 15. निकास, 16. योग, 17. उपयोग,
18. कषाय, 19. लेश्या, 20. परिणाम, 21. बन्ध, 22. वेदन,
23. उदीरणा, 24. उपसम्पदहान, 25. संज्ञा, 26. आहार, 27. भव,
28. आकर्ष, 29. कालमान, 30. अन्तर, 31. समुद्घात, 32. क्षेत्र,
33. स्पर्शना, 34. भाव, 35. परिमाण, 36. अल्पबहुत्व।

द्वार-'दरवाजा' जिसमें प्रवेश कर विषय-वस्तु का विशद वर्णन प्राप्त हो, उसे द्वार कहते हैं।

**शतक**-उद्देशकों के समूह को शतक कहते हैं। (पारिभाषिक अर्थ)  
**शतक**-अर्थात् सौ, पहले एक सौ शतक थे, अब अवान्तर शतक मिलाकर एक सौ होते हैं।

**उद्देशक**-जिसमें विशेष-विषय का उद्देश्य करके विश्लेषण किया जाता है, उसे उद्देशक कहते हैं।

## 1. प्रज्ञापन द्वारा

जो बाह्य और आध्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) मिथ्यात्व मोह और प्रारम्भिक तीन कषाय के चौक इस प्रकार मोहनीय की 13 सर्वधाति प्रकृति और इनकी सीमा में आने वाले 9 कषायों की ग्रन्थि के उदय से रहित होते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। उन सब के सर्वविरति चारित्र होते हुए भी चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम, उपशम, क्षय आदि विभिन्नता के कारण निर्ग्रन्थ 5 प्रकार के बतलाये गये हैं- 1. पुलाक, 2. बकुश, 3. कुशील, 4. निर्ग्रन्थ, 5. स्नातक।

**1. पुलाक**-पुलाक का अर्थ है निस्सार धान्यकण। जैसे खेत में गोधूम (गेहूँ), शालि (चावल) आदि के पौधों को काट कर पूले बाँधकर ढेर लगाया जाता है। उसमें धान्य तो थोड़ा होता है मगर कचरा (धान्य के सिवाय का भाग) बहुत होता है। इसी प्रकार जिस साधु में गुण थोड़े और दुर्गुण अधिक हों वह पुलाक-निर्ग्रन्थ कहलाता है। पुलाक निर्ग्रन्थ में एक मात्र छठा गुणस्थान होता है। पुलाक के दो भेद हैं- 1. लब्धि पुलाक, 2. आसेवना पुलाक।

**(A) लब्धि पुलाक**-पुलाक लब्धि से युक्त साधु 'लब्धि पुलाक' कहलाता है। जो कि प्रयोजन से विराधना करते हैं। जिनशासन रक्षा एवं शासन-प्रभावना आदि कार्य करता है। वह अपनी लब्धि से जब कोई चक्रवर्ती आदि जिनशासन तथा साधु-साधिवियों के लिए असह्य संकट उत्पन्न

कर दे, अन्य उपाय संभव न होने पर पुलाक लब्धि के धारक मुनि, चक्रवर्ती की सेना व चक्रवर्ती को दण्ड देने हेतु पुलाक लब्धि का प्रयोग करते हैं। इस लब्धि प्रयोग से बलवाहन सहित चक्रवर्ती का भी विनाश कर सकते हैं। (कुछ आचार्यों का मत है कि प्रतिसेवना से (ज्ञानादि में अतिचार लगाना) जो ज्ञान पुलाक है, उन्हीं को यह लब्धि प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त दूसरा कोई लब्धि पुलाक नहीं होता है।)

(B) आसेवना पुलाक-आसेवना पुलाक के 5 भेद होते हैं-

- (i) **ज्ञान पुलाक**-स्खलित आदि ज्ञान के अतिचारों का सेवन करने वाला। मति-श्रुतादि ज्ञान को दूषित करना।
- (ii) **दर्शन पुलाक**-शंका आदि दर्शन के अतिचारों का सेवन कर सम्यक्त्व को दूषित करने वाला।
- (iii) **चारित्र पुलाक**-मूलगुण-उत्तर गुणों में दोष लगाकर चारित्र की विराधना करने वाला।
- (iv) **लिङ्ग पुलाक**-बिना कारण अन्य लिङ्ग को धारण करने वाला।
- (v) **यथासूक्ष्म पुलाक**-मन से अकल्पनीय वस्तु को ग्रहण करने का विचार करने वाला। उपर्युक्त सभी में थोड़ा-थोड़ा दोष लगाने वाला।

2. **बकुश**-बकुश अर्थात् चित्तकबरा। जैसे पूर्वोक्त पूलों में से घास दूर कर दिया जाए और ऊंचियों (बचलों) का ढेर किया जाए तो उसमें यद्यपि पहले की अपेक्षा कचरा बहुत कम हो गया है, फिर भी धान्य की अपेक्षा कचरा अधिक है, इसी प्रकार जो मुनि गुण-अवगुण दोनों के धारक हों, वे बकुश निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। बकुश में छठा-सातवाँ ये

दो गुणस्थान होते हैं। बकुश के दो भेद हैं—1. शरीर बकुश, 2. उपकरण बकुश।

- (A) **शरीर बकुश**—जो सौन्दर्य लालसा से हाथ, पैर, मुँह, केश आदि शरीर के अवयवों की शोभा-विभूषा करता है, और जो काय गुप्ति से रहित होता है, उसे शरीर बकुश कहते हैं।
- (B) **उपकरण बकुश**—वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों की विभूषा करने वाले 'उपकरण बकुश' कहलाते हैं। इसके पाँच भेद हैं—(अ) आभोग बकुश—जानते हुए दोष लगावें। (ब) अनाभोग बकुश—नहीं जानते हुए दोष लगावें। (स) संवृत्त बकुश—छिपकर दोष लगावें। (द) असंवृत्त बकुश—प्रकट रूप से दोष लगावें। (य) यथासूक्ष्म बकुश—उत्तर गुणों के विषय में प्रकट या अप्रकट रूप से कुछ प्रमाद सेवन करने वाला साधु।
3. **कुशील**—गोधूम (गेहूँ) और शालि की ऊंबियों के उस ढेर में से घास अलग कर दिया, मिट्टी आदि अलग कर दी, खलिहान में बैलों के पैरों से कुचलवा कर (दाँय करके) दाने अलग कर लिए, तो उस समय दाने और कचरा लगभग समान होता है, उसी प्रकार कुशील निर्गन्ध प्रायः गुण—अवगुण की समानता के धारक होते हैं। इसके दो भेद हैं—1. प्रतिसेवना कुशील, 2. कषाय कुशील।
- (A) **प्रतिसेवना कुशील**—मूल गुण व उत्तरगुण की विराधना से दूषित चारित्र वाले साधु प्रतिसेवना कुशील कहलाते हैं। इसमें छठा व सातवाँ ये दो गुणस्थान होते हैं। इसके पाँच भेद हैं—
- (i) **ज्ञान प्रतिसेवना कुशील**—ज्ञान से आजीविका करने वाले।  
(ii) **दर्शन प्रतिसेवना कुशील**—दर्शन से आजीविका करने वाले।  
(iii) **चारित्र प्रतिसेवना कुशील**—चारित्र से आजीविका करने वाले।

- (iv) लिङ्ग प्रतिसेवना कुशील-लिङ्ग (वेषादि) से आजीविका करने वाले।
- (v) यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील-तपादि की प्रशंसा से प्रसन्न होने वाले तथा देवादि की पदवी पाने की इच्छा करने वाले।
- (B)** कषाय कुशील-संज्वलन कषाय के उदय से चारित्र में पूर्ण निर्मलता नहीं होने से कषाय कुशील कहलाता है। इसमें छठे से लेकर दसवें तक पाँच गुणस्थान होते हैं। इसके पाँच भेद हैं-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिङ्ग और यथासूक्ष्म।
- (i) जो क्रोध, मान आदि कषाय द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की कषाय कुशील के स्तर तक विराधना करता है, उसे क्रमशः ज्ञान, दर्शन, चारित्र कषाय कुशील कहते हैं।
- (ii) लिङ्ग-जो कषायपूर्वक वेष परिवर्तन करते हैं, उन्हें लिङ्ग कषाय कुशील कहते हैं।
- (iii) यथासूक्ष्म-जो मन से क्रोधादि कषाय का सेवन करते हैं, उन्हें यथासूक्ष्म कषाय कुशील कहते हैं।
4. **निर्गन्थ-**‘ग्रन्थ’ मोह का पर्यायवाची शब्द है। जैसे उस धान्य की राशि को हवा में उड़ाने से उसमें का कचरा-मिट्टी आदि अलग हो जाता है, अत्यल्प कंकर रह जाते हैं, इसी प्रकार जिनकी पूर्ण आत्मशुद्धि में किंचित् मात्र कमी शेष बची है, वे साधु निर्गन्थ कहलाते हैं। इनमें 11वाँ तथा 12वाँ ये दो गुणस्थान होते हैं। मोहनीय की सम्पूर्ण 28 प्रकृतियों के ग्रन्थ से रहित अर्थात् उदय से रहित। इसके उपशांत मोह निर्गन्थ और क्षीण मोह निर्गन्थ ये दो भेद हैं। इन दोनों के समयादि की अपेक्षा से पाँच-पाँच भेद हैं-

- (i) प्रथम समयवर्ती निर्गन्थ- 11वें, 12वें गुणस्थान के प्रथम समय वाले।
- (ii) अप्रथम समयवर्ती निर्गन्थ- 11वें, 12वें गुणस्थान में जिसे एक समय से अधिक काल हो गया हो। अर्थात् प्रथम समय को छोड़कर शेष समयवर्ती निर्गन्थ।
- (iii) चरम समयवर्ती निर्गन्थ- 11वें, 12वें गुणस्थान के अन्तिम समय वाले।
- (iv) अचरम समयवर्ती निर्गन्थ- 11वें गुणस्थान का काल जघन्य 1 समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का होता है। बारहवें गुणस्थान का काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। इन दोनों गुणस्थान के अन्तिम समय के सिवाय शेष समयों में रहने वाले निर्गन्थ।
- (v) यथासूक्ष्म निर्गन्थ- प्रथमादि समय की विवक्षा बिना सामान्य रूप से सभी समयों में रहे हुए निर्गन्थ।
5. **स्नातक-**जैसे उस धान्य के समस्त कंकर चुन-चुनकर निकाल फैंके जाएँ और धान्य को जल से धोकर स्वच्छ कर लिया जाए, उसी प्रकार जो मुनि पूर्ण विशुद्ध हो जाते हैं, वे स्नातक निर्गन्थ कहलाते हैं। इनमें 13वाँ तथा 14वाँ ये दो गुणस्थान होते हैं। ये पूर्णतः शुद्ध, अखण्ड चारित्र वाले होते हैं। इनके पाँच भेद हैं- अच्छवी, अशबल, अकर्माश, संशुद्ध, अपरिस्नावी।
- (i) अच्छवी- छवि अर्थात् शरीर। योगों का निरोध किये हुए 14वें गुणस्थानवर्ती।
- (ii) अशबल- दोष रहित, विशुद्ध चारित्रवान।

- (iii) अकर्माश-घातिकर्मों से रहित।
- (iv) संशुद्ध-केवलज्ञान-केवलदर्शन, यथार्थ्यात् चारित्र के धारक, अरिहन्त, जिन, केवली आदि।
- (v) अपरिस्वावी-योग क्रिया रहित होने से कर्म-बन्ध (आस्रव) रहित 14वें गुणस्थानवर्ती।

## 2. वेद द्वारा

- पुलाक में वेद पावे दो-पुरुष वेद, पुरुष नपुंसक वेद।
- बकुश, प्रतिसेवना कुशील में तीन-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।
- कषाय कुशील में तीन-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अवेदी हो तो उपशांत वेदी या क्षीण वेदी।
- निर्गन्थ-अवेदी-उपशांत वेदी या क्षीण वेदी।
- स्नातक-अवेदी-क्षीण वेदी।

### ज्ञातव्य-

पुलाक लब्धि स्त्रीवेदी को तथा स्त्री नपुंसक वेदी को नहीं होती। पुरुषवेदी तथा पुरुष नपुंसकवेदी को हो सकती है। पुलाक लब्धि के लिए जघन्य नौरें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का ज्ञान होना अनिवार्य है। स्त्रीवेदी को पूर्वों का ज्ञान नहीं हो पाता है। नपुंसकवेदी दो प्रकार के होते हैं- 1. पुरुष नपुंसक वेदी, 2. स्त्री नपुंसक वेदी। पुरुष नपुंसक वेदी चाहे वह जन्म नपुंसक हो अथवा बाद में बनाया हुआ कृत नपुंसक हो, दोनों ही प्रकार के पुरुष नपुंसक वेदी पुलाकादि लब्धि प्राप्तकर सकते हैं तथा उसी भव में कषाय कुशील साधु बनकर निर्गन्थ और स्नातक पद को प्राप्त करते हुए मोक्ष में भी जा सकते हैं। नपुंसक वेदी में जो पुरुष नपुंसक होते हैं, वे संयम अंगीकार कर सकते हैं, पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, अतः उनमें पुलाक

लब्धि मानी गई हैं। स्त्री नपुंसक अत्यधिक विकृत मानसिक स्थिति वाले होने के कारण संयम पालन के तथा पूर्वज्ञान प्राप्ति के अयोग्य माने जाते हैं, इसलिए इनमें पुलाक लब्धि नहीं मानी जाती। स्त्रीवेद तथा स्त्री नपुंसक वेद से तात्पर्य यहाँ द्रव्यवेद की अपेक्षा से समझना चाहिए।

नवें गुणस्थान के प्रारंभ के भाग तक (नवें गुणस्थान का प्रारंभिक अल्प भाग सवेदी तथा बहुभाग अवेदी है) वेद का उदय रहता है अतः पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील सवेदी ही होते हैं। पुलाक में छठा गुणस्थान, बकुश तथा प्रतिसेवना कुशील में छठा-सातवाँ गुणस्थान होता है।

कषाय कुशील में 6 से 10 तक गुणस्थान होते हैं। इनमें 9, 10 गुणस्थान में उपशम श्रेणि वाले उपशांत वेदी तथा क्षपक श्रेणि वाले क्षीण वेदी कहलाते हैं। छठे से लेकर नवें गुणस्थान के शुरू के भाग तक वाले तो सवेदी ही होते हैं।

निर्गन्थ में 11वाँ, 12वाँ गुणस्थान ही होता है। ये अवेदी ही होते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशांत वेदी तथा बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण वेदी होते हैं।

स्नातक में 13वाँ, 14वाँ ये दो गुणस्थान होते हैं। ये क्षपक श्रेणि वाले ही प्राप्त करते हैं, इसलिए ये क्षीण वेदी ही होते हैं।

### 3. राग द्वाद

- पुलाकादि चार नियंठा सरागी होते हैं।
- निर्गन्थ-उपशांत कषाय वीतरागी और क्षीण कषाय वीतरागी होते हैं।
- स्नातक क्षीण कषाय वीतरागी होते हैं।

ज्ञातव्य-

राग का संबंध चारित्र मोहनीय से है। चारित्र मोहनीय का उदय पहले से

लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील ये चारों छठे से दसवें गुणस्थान वाले होने से सरागी होते हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक में 11वें से 14वें गुणस्थान वाले होने से वीतरागी होते हैं। 11वें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थ उपशांत कषाय वीतरागी तथा 12वें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं। 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं। 'निर्ग्रन्थ' छद्मस्थ वीतरागी तथा 'स्नातक' केवली वीतरागी कहलाते हैं।

#### **4. कल्प द्वारा**

1. पुलाक में कल्प पावे तीन-स्थित, अस्थित, स्थविरकल्प।
2. बकुश, प्रतिसेवना में पावे चार-स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प।
3. कषाय कुशील में पावे पाँच-स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प और कल्पातीत।
4. निर्ग्रन्थ और स्नातक में पावे तीन-स्थित, अस्थित, कल्पातीत।

**ज्ञातव्य-**

**कल्प**—जिन मर्यादाओं का विधि या निषेध रूप से पालन किया जाता है, उसे 'कल्प' कहते हैं। कल्प को मुख्य रूप से पाँच प्रकार से बतलाया है—(अ) स्थितकल्प, (ब) अस्थितकल्प, (स) स्थविरकल्प, (द) जिनकल्प, (य) कल्पातीत।

प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं में 'अचेल कल्प' आदि दस कल्प होते हैं। क्योंकि उन्हें उनका पालन करना आवश्यक होता है। इसलिए वे स्थित कल्प में होते हैं। बीच के बाईंस तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए चार कल्प नियमा होते हैं और छह कल्प उनके नियमा नहीं होते हैं। इस तरह सभी कल्प का पालन करना उनके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए वे अस्थित कल्प वाले होते हैं।

छद्मस्थ तीर्थङ्कर सकषायी भी होते हैं। इसलिए कषाय कुशील में कल्पातीतपना भी पाया जा सकता है।

निर्ग्रन्थ और स्नातक में जिनकल्प और स्थविरकल्प के धर्म नहीं होते। इसलिए ये दोनों कल्पातीत ही होते हैं। (टीका)।

पंचाशक ग्रन्थ में दस कल्प इस प्रकार बतलाये गये हैं— 1. अचेल कल्प, 2. औद्देशिक कल्प, 3. राजपिण्ड, 4. शश्यातर, 5. मास कल्प, 6. चातुर्मास कल्प, 7. व्रत, 8. प्रतिक्रमण, 9. कृतिकर्म, 10. पुरुष ज्येष्ठ। दस कल्प का अर्थ इस प्रकार है—

1. **अचेल कल्प**—पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधुओं के सफेद रंग के वस्त्र रखने का कल्प है। ये वस्त्र कम कीमत के होते हैं तथा सीमित परिमाण में रखे जाते हैं। शेष बावीस तीर्थङ्कर के साधु भी सफेद कपड़े ही रखते हैं, किंतु गवेषणा करने पर भी सफेद कपड़े न मिले तो रंगीन वस्त्र भी ले लेते हैं वह उनके लिये दोषोत्पत्ति का कारण नहीं होता। पाँच वर्ण के वस्त्रों में से कोई भी प्रकार का वस्त्र रख सकते हैं। रंग के प्रति उनकी किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं होती।
2. **औद्देशिक कल्प**—पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधु का अन्य संभेगी साधु के निमित्त से बनाया हुआ आहार दूसरे साधु के नहीं लेने का कल्प है यदि लेवे तो औद्देशिक दोष लगे। शेष बावीस तीर्थङ्कर के साधु उक्त औद्देशिक आहार ले सकते हैं।
3. **राजपिण्ड**—पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधु राजपिण्ड—यानी राज्याभिषेक पूर्वक राज्य का संचालन करने वाले राजा के वास्ते बनाया हुआ आहार—नहीं लेने का कल्प है। शेष बावीस तीर्थङ्कर के

साधु राजपिण्ड भी ले सकते हैं। किंतु उसके प्रति उनका आग्रह भाव नहीं रहता है।

4. **शय्यातर-**चौबीस ही तीर्थङ्करों के साधुओं का शय्यातर (जिसके मकानादि में रात्रि में रहे, उसके यहाँ से अगले दिन से) के यहाँ से आहार नहीं लेने का कल्प है।
5. **मास कल्प-**पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधुओं के लिए नव कल्पी विहार बताया गया है। शेष बावीस तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए नव कल्पी विहार की अनिवार्यता नहीं बतायी गयी है। वे अपनी इच्छानुसार विहार कर सकते हैं।
6. **चातुर्मास कल्प-**पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधुओं का वर्षाकाल में चार महीने एक स्थान पर रहने का कल्प है। बावीस तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए यह नियम अनिवार्य नहीं है।
7. **व्रत-**पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधु-साध्वी के लिए पाँच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन त्याग का कल्प है। बावीस तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए चार महाव्रत व रात्रि भोजन त्याग का कल्प है। चार महाव्रतों में पाँचों महाव्रतों का समावेश हो जाता है।
8. **प्रतिक्रमण-**पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधु-साध्वी के लिए देवसिय (दैवसिक-दिवस सम्बन्धी), राइय (रात्रिक-रात्रि सम्बन्धी), पक्खी, चौमासी व संवत्सरी-ये पाँच प्रतिक्रमण करने का कल्प है।
9. **कृतिकर्म-**चौबीस तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए यह कल्प है कि छोटी दीक्षा वाले साधु बड़ी दीक्षा वालों को वंदना नमस्कार करते हैं उनका गुणग्राम करते हैं।

10. **पुरुष ज्येष्ठ-चौबीस ही तीर्थঙ्करों के** लिए यह कल्प है कि पुरुष की प्रधानता होने से चाहे सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी हो तो भी वह नवदीक्षित साधु को वंदना नमस्कार करती है।

चूँकि पहले तीर्थङ्कर के साधु ऋजु जड़ (सरल किंतु मन्द बुद्धि) होते हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्र जड़ (प्रकृति के बांके-टेढ़े और बुद्धि से भी मन्द) होते हैं। शेष बावीस तीर्थङ्कर के साधु ऋजु प्राज्ञ (प्रकृति के सरल और तीक्ष्ण बुद्धि वाले) होते हैं। इसी कारण पहले व चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधुओं के कल्प में और शेष बावीस तीर्थङ्करों के साधुओं के कल्प में अन्तर है।

पहले और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं में दस ही कल्प नियमा होते हैं। बीच के 22 तीर्थङ्करों के साधुओं में चार कल्प (चौथा, सातवाँ, नवाँ, दसवाँ) की नियमा और छह कल्प की भजना होती है।

शास्त्रोक्त मर्यादानुसार वस्त्र पात्रादि रखना स्थविरकल्प है। जघन्य दो-मुखवस्त्रिका और रजोहरण, उत्कृष्ट 12 उपकरण रखना जिनकल्प है।

अरिहन्त, केवली और तीर्थङ्कर ये सभी कल्पातीत होते हैं।

## 5. संयम द्वाद

- पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में संयम पावे दो-सामायिक और छेदोपस्थापनीय।
- कषाय कुशील में संयम पावे चार-सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म संपराय।
- निर्गन्ध और स्नातक में एक-यथाख्यात संयम (चारित्र)

**ज्ञातव्य-**

पुलाक में छठा गुणस्थान तथा बकुश, प्रतिसेवना कुशील में छठा-

सातवाँ गुणस्थान होता है अतः सामायिक और छेदोपस्थापनीय ये दो संयम मिलते हैं। पुलाक, बकुश व प्रतिसेवना कुशील ये तीनों नियंते दोष लगाने वाले होते हैं, इसलिए इनमें परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात चारित्र नहीं मिलते। ये तीनों प्रकार के संयम (चारित्र) तो निर्दोष संयम पालन करने वालों को ही प्राप्त होते हैं। कषाय कुशील में 6 से 10 तक गुणस्थान पाये जाते हैं, अतः छठे से नवें गुणस्थान तक सामायिक, छेदोपस्थापनीय चारित्र, छठे-सातवें गुणस्थान में परिहारविशुद्धि चारित्र हो सकता है तथा 10वें गुणस्थान की अपेक्षा सूक्ष्म संपराय चारित्र मिलता है। निर्गन्ध और स्नातक 11 से 14 गुणस्थानवर्ती होने से इनमें एक मात्र यथाख्यात चारित्र ही मिलता है।

## **6. प्रतिसेवना द्वारा**

1. पुलाक तथा प्रतिसेवना कुशील-ये दोनों मूलगुण तथा उत्तरगुण के प्रतिसेवी होते हैं।
2. बकुश मूलगुण के अप्रतिसेवी तथा उत्तरगुण के प्रतिसेवी होते हैं।
3. कषायकुशील, निर्गन्ध और स्नातक ये तीनों अप्रतिसेवी होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

अहिंसादि महाव्रतों में दोष लगाने वाले मूलगुण प्रतिसेवी कहलाते हैं तथा अनागत, अतिक्रान्त, कोटिसहित आदि दस प्रकार के प्रत्याख्यानों एवं पिण्ड विशुद्धि (आहार, वस्त्र, पात्र, शर्या सम्बन्धी) आदि उत्तरगुणों में दोष लगाने वाले उत्तरगुण प्रतिसेवी कहलाते हैं। जो संयम विरुद्ध आचरण करते हैं, वे प्रतिसेवी तथा जो संयम में किसी प्रकार का दोष नहीं लगाते, वे अप्रतिसेवी कहलाते हैं।

पुलाक लघ्डि का जब प्रयोग होता है, तब प्रयोग करने वाला साधु

नियमा प्रतिसेवी होता है। यदि चक्रवर्ती की सेना का विनाश आदि करता है तो उस समय वह मूलगुण प्रतिसेवी होता है और यदि सेना को भयभीत आदि करता है तो उस समय वह उत्तरगुण प्रतिसेवी होता है। लब्धि-प्रयोग का संकल्प हो तब भी वह उत्तरगुण प्रतिसेवी होता है।

जिसके पास लब्धि है, परन्तु परिणामों की शुद्धता के साथ यदि वह शुद्ध संयम के पालन में संलग्न रहता है तो वह कषायकुशील आदि साधु अप्रतिसेवी होता है। लब्धि प्रयोग की आलोचना आदि से विशुद्धि कर लेने पर वह साधु अप्रतिसेवी बन जाता है। जैसे शास्त्रोक्त कारणों से नदी आदि पर करते हुए भी अप्रतिसेवी रह जाता है, वैसे ही आहारक शरीर पुष्ट आलम्बनों से बनाये जाने से आहारक समुद्घात में आगमकारों ने प्रतिसेवना नहीं मानी है।

आहारक लब्धि का प्रयोग कषाय कुशील साधु विराधना की प्रवृत्ति से नहीं करता है, अतः मूलगुण-उत्तरगुण में दोष नहीं लगाता, इसीलिए उसे अप्रतिसेवी माना जाता है। लब्धि का प्रयोग प्रमाद अवस्था में अर्थात् छठे गुणस्थान में होता है।

कषाय कुशील साधु-साध्वी अप्रतिसेवी होते हुए भी उनके संज्वलन कषाय का उदय रहने के कारण वे कषाय कुशील कहे जाते हैं। निर्गन्थ और स्नातकों के तो किसी भी प्रकार की कषाय का उदय होता ही नहीं है।

## 7. ज्ञान द्वाद

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में ज्ञान पावे-दो अथवा तीन। दो हो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। तीन हो तो मति, श्रुत व अवधिज्ञान।
2. कषाय कुशील और निर्गन्थ में ज्ञान पावे-दो, तीन अथवा चार। दो हो तो मति व श्रुतज्ञान। तीन हो तो मति, श्रुत व अवधि ज्ञान अथवा मति, श्रुत व मनःपर्यव ज्ञान। चार हो तो मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यवज्ञान।

3. स्नातक में ज्ञान पावें एक-केवलज्ञान।

### श्रुत (ज्ञान) की मात्रा -

1. पुलाक जघन्य नवे पूर्व की तीसरी आचार वस्तु, उत्कृष्ट सम्पूर्ण नौ पूर्व का अध्ययन करते हैं।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील जघन्य आठ प्रवचन माता (5 समिति, 3 गुप्ति), उत्कृष्ट दस पूर्व का अध्ययन करते हैं।
3. कषाय कुशील, निर्गन्ध जघन्य आठ प्रवचन माता, उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का अध्ययन करते हैं।
4. स्नातक, केवलज्ञानी होने से श्रुत व्यतिरिक्त अर्थात् श्रुतज्ञान की सीमा से परे होते हैं।

### ज्ञातव्य-

पुलाक, बकुश व प्रतिसेवना कुशील, ये तीनों प्रतिसेवी होते हैं, इसलिए इनको मनःपर्यव ज्ञान नहीं हो पाता। मनःपर्याय ज्ञान ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त अनगार को ही होता है।

कषाय कुशील साधु उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का ज्ञान सीखते हैं। 14 पूर्व का विशिष्ट महत्व है। आहारक लब्धि के लिए भी 14 पूर्वों का ज्ञान बतलाया है। भगवती शतक 5 उद्घेशक 4 में भी 14 पूर्वों को केवली के समान अर्थात् श्रुतकेवली कहा है। 14 पूर्वों का ज्ञाता शेष 4 विभागों का सम्यग्ज्ञान होता ही है। चूलिका पूर्वों में सम्मिलित ही है बाकी तीनों विभाग अनुक्रमणिका, परिशिष्ट के समान, 14 पूर्वों जानता ही है, इसलिए उत्कृष्ट श्रुत में 14 पूर्वों का कथन किया गया है।

## 8. तीर्थ द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों तीर्थ में ही होते हैं।
2. कषाय कुशील, निर्गन्ध और स्नातक, ये तीनों तीर्थ तथा अतीर्थ दोनों में होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

तीर्थङ्कर भगवान द्वारा चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) रूप तीर्थ की विद्यमानता में जो साधु-साध्वी मिलते हैं वे तीर्थ में कहलाते हैं तथा जो तीर्थ प्रवर्तन के पहले अथवा तीर्थ विच्छेद के बाद जो प्रत्येक बुद्धादि साधु होते हैं, वे अतीर्थ में कहलाते हैं।

छद्मस्थ अवस्था में तीर्थङ्कर जब छठे से दसवें गुणस्थान में कषाय कुशील के रूप में होते हैं, तब वे भी अतीर्थ में माने जाते हैं। अतीर्थ में होने वाले कषाय कुशील साधु-साध्वी श्रेणि चढ़ते हैं तब 11वें, 12वें गुणस्थान में निर्ग्रन्थ तथा केवली बन जाने पर वे ही स्नातक कहलाते हैं, इसी कारण से कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इन तीनों को अतीर्थ में भी माना जाता है। जैसे-मरुदेवी माता आदि।

अतीर्थ के समय में भावों के आधार पर विशुद्ध परिणामों से संयम पर्याय का पालन करता हुआ, क्षपक श्रेणि चढ़ता हुआ जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। बाह्य आचार सम्बन्धी दोष नहीं लगने से अतीर्थ में कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये तीन भेद ही हो सकते हैं। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों अतीर्थ में नहीं हो सकते।

तीर्थ प्रवर्तन के पश्चात् जिन्हें आचार पालन में दोष लग सकता है, वे तीर्थ में रहकर विशुद्ध भी बन सकते हैं, अतः तीर्थ में पुलाकादि छहों नियंत्रे माने जाते हैं।

## **9. लिङ्ग द्वाद**

पुलाक आदि छहों नियंता द्रव्यलिङ्ग आसरी-स्वलिङ्ग, अन्यलिङ्ग व गृहस्थलिङ्ग में होते हैं। भाव लिङ्ग आसरी-स्वलिङ्ग में ही होते हैं।

## स्नातव्य-

लिङ्ग अर्थात् पहचानने का साधन। लिङ्ग के दो भेद होते हैं— 1. द्रव्यलिङ्ग, 2. भावलिङ्ग। द्रव्यलिङ्ग के दो भेद हैं—स्वलिङ्ग और अन्यलिङ्ग। रजोहरण, मुखवस्त्रिका, सफेद वस्त्र धारण करना इत्यादि द्रव्य से स्वलिङ्ग कहलाते हैं। अन्यलिङ्ग के दो भेद हैं—अन्यतीर्थिक लिङ्ग और गृहस्थलिङ्ग। सम्पर्कज्ञान—दर्शन—चारित्र—तप की आराधना भावलिङ्ग है। यह भावलिङ्ग केवल प्रसूपित सर्वविरति धर्म का पालन करने वालों में ही होता है, अतः इसे भाव की अपेक्षा स्वलिङ्ग भी कहा जाता है।

पुलाकादि छहों नियंता द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा से—स्वलिङ्ग, अन्यलिङ्ग तथा गृहस्थलिङ्ग इन तीनों लिङ्गों में हो सकते हैं किंतु भावलिङ्ग में तो उनमें ज्ञान—दर्शन—चारित्र रूप स्वलिङ्ग अनिवार्य है। स्नातक (केवली) बनने के बाद यदि लम्बी स्थिति शेष हो तो वे अवश्य ही द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा भी स्वलिङ्ग (जैन साधु का वेष) धारण कर लेते हैं। मरुदेवी माता केवलज्ञान पाने के अन्तर्मुहूर्त बाद ही मोक्ष में चली गई, इसलिए साधु का वेश धारण नहीं कर पायी अतः गृहस्थलिङ्ग सिद्ध मानी जाती है, जबकि भरत महाराजा को आरीसा भवन में केवलज्ञान हो जाने पर भी लम्बी स्थिति शेष होने के कारण, उन्होंने गृहस्थलिङ्ग को छोड़कर स्वलिङ्ग (जैन साधु का वेष) धारण किया था, इसलिए वे स्वलिङ्ग सिद्ध माने जाते हैं।

पुलाक को अन्यलिङ्ग, गृहस्थलिङ्ग में किस अपेक्षा से समझना—पुलाक लब्धि वाला साधु जिसे एक देश से दूसरे देश में जाना आवश्यक हो, बीच में ऐसा राज्य आता हो, जिसमें जैन साधुओं के प्रवेश पर पाबन्दी हो, वहाँ अन्यलिङ्ग अथवा गृहस्थलिङ्ग धारण करके उस राज्य में प्रवेश कर लें। वहाँ किसी के पहचान जाने पर कोई आपत्ति खड़ी कर दे, बहुत बड़ा संकट

उपस्थित करदे, अन्य कोई समाधान नहीं निकले तो विवश होकर जिनशासन की एवं संघ की सुरक्षा के लिए वह साधु उसी अन्यलिङ्ग अथवा गृहस्थलिङ्ग में रहते हुए ही पुलाक लब्धि का प्रयोग कर ले, इस अपेक्षा से पुलाक अन्यलिङ्ग, गृहस्थलिङ्ग में माना जाता है।

## 10. शरीर द्वारा

1. पुलाक, निर्गन्थ और स्नातक में शरीर पावे तीन-औदारिक, तैजस, कार्मण।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील में शरीर पावे तीन अथवा चार-तीन हो तो पूर्वोक्त, चार हो तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
3. कषाय कुशील में तीन, चार अथवा पाँच-तीन हो तो-औदारिक, तैजस, कार्मण। चार हो तो-औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। पाँच हो तो-औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

### स्नातव्य-

पुलाक, निर्गन्थ और स्नातक ये तीनों वैक्रिय, आहारक आदि लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, अतः इनमें औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीन शरीर होते हैं। बकुश, प्रतिसेवना व कषाय कुशील भी जब वैक्रिय, आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, तब उनमें ये तीनों ही शरीर होते हैं। सातवें से चौदहवें गुणस्थानवर्ती में भी लब्धि का प्रयोग नहीं होने के कारण ये तीनों ही शरीर होते हैं। स्नातक में 14वें गुणस्थान में शरीरस्थ होते हुए भी अयोगी हो जाने से उनमें शरीर नामकर्म का उदय नहीं माना जाता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील में वैक्रिय लब्धि हो सकती है, आहारक लब्धि नहीं। क्योंकि इनमें उत्कृष्ट दस पूर्वों तक का ही ज्ञान होता है। जबकि आहारक लब्धि के लिए चौदह पूर्वों का ज्ञान अनिवार्य होता है। बकुश,

प्रतिसेवना कुशील जब छठे गुणस्थान में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करते हैं तब उनमें वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है, अतः चार शरीर भी माने हैं।

कषाय कुशील में चौदह पूर्वों का ज्ञान हो सकता है। जिनमें यह ज्ञान होता है, उनमें से किसी-किसी को आहारक लब्धि भी प्राप्त हो सकती है। जिनकों आहारक लब्धि प्राप्त हो जाती है, वे छठे गुणस्थान में इस लब्धि का जब प्रयोग करते हैं, तब उनमें आहारक शरीर भी होता है।

कषाय कुशील में चार शरीर का विकल्प एक ही तरह से बतलाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिना वैक्रिय शरीर के आहारक शरीर नहीं होता। यदि ऐसा संभव होता तो चार शरीर का दूसरा विकल्प—औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण का बता दिया होता, किंतु ऐसा नहीं बतलाया। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आहारक लब्धि वालों को वैक्रिय लब्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है।

यह अलग बात है कि वैक्रिय व आहारक लब्धि का प्रयोग एक साथ नहीं हो पाता। अतः लब्धि (शक्ति) की अपेक्षा कषाय कुशील साधु में एक साथ पाँच शरीर तथा प्रवृत्ति की अपेक्षा एक साथ अधिकतम चार शरीर (वैक्रिय, आहारक में से कोई एक) हो सकते हैं।

## 11. क्षेत्र द्वार

1. छहों नियंता जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि में होते हैं।
2. संहरण की अपेक्षा पुलाक को छोड़कर शेष सभी नियंता कर्मभूमि-अकर्मभूमि दोनों में होते हैं।

ज्ञातव्य-

जहाँ असि, मसि, कृषि होती है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, केवली, साधु, साध्वी आदि होते हैं जहाँ जप-तप-संयम आदि आध्यात्मिक

साधना हो सकती है, वह क्षेत्र कर्मभूमि कहलाता है। जहाँ असि, मसि, कृषि नहीं होती, वृक्षों (विशेष प्रकार की वनस्पति) द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, युगल रूप में मनुष्यों का जन्म होता है, तीर्थङ्कर, केवली, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि जहाँ नहीं होते, जहाँ जप-तप-संयम आदि आध्यात्मिक साधना न हो सकें, ऐसे क्षेत्र अकर्मभूमि कहलाते हैं।

पुलाक लब्धि वालों का देवता संहरण नहीं कर सकते हैं। इसलिए पुलाक लब्धि वाले जन्म तथा सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि क्षेत्र में ही मिलते हैं। सात बोलों का संहरण नहीं होता है— 1. संयमशीला साध्वी, 2. अवेदी, 3. परिहारविशुद्धि चास्त्री, 4. पुलाक साधु, 5. अप्रमत्त संयत, 6. चौदह पूर्वधारी और 7. आहारक लब्धि वाले साधु।

यद्यपि निर्गन्थ और स्नातक को संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमि में भी माना जाता है, तथापि उसका तात्पर्य भूतकालीन पर्याय की अपेक्षा समझना चाहिए। अर्थात् प्रमादी साधु जो कि बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील हो (छठा गुणस्थानवर्ती) उसका संहरण (देवतादि द्वारा कौतुकता, वैर भावना, दुःख देने आदि के निमित्त से जबरदस्ती उठाकर अन्यत्र ले जाना 'संहरण' कहलाता है) होता है, बाद में वह प्रमादी साधु अपने विशुद्ध अध्यवसायों से संहरण किये गये क्षेत्र (अकर्मभूमिज) में ही निर्गन्थ एवं स्नातक बन जाता है। इस कारण से निर्गन्थ और स्नातक का पूर्व पर्याय में संहरण माना जाता है।

## **12. काल द्वाद**

1. अवसर्पिणी काल में—पुलाक, निर्गन्थ और स्नातक—जन्म की अपेक्षा तीसरे—चौथे आरे में, सद्भाव की अपेक्षा तीसरे, चौथे, पाँचवें आरे में होते हैं।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील—जन्म और सद्भाव की अपेक्षा तीसरे, चौथे, पाँचवें आरे में होते हैं।

3. उत्सर्पिणी काल में—छहों नियंथा जन्म की अपेक्षा दूसरे, तीसरे, चौथे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा तीसरे चौथे आरे में होते हैं।
4. नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में—छहों नियंथा जन्म और सद्भाव की अपेक्षा चौथे पलिभाग में (महाविदेह क्षेत्र में) होते हैं।
5. संहरण आसरी—पुलाक का संहरण नहीं होता। शेष 5 नियंथों का छहों आरों और चारों पलिभागों में संहरण हो सकता है।

### **ज्ञातव्य-**

पलिभाग शब्द का अर्थ है—समान काल। चार पलिभाग इस प्रकार हैं—

1. देवकुरु—उत्तरकुरु, 2. हरिवास—रम्यकृवास, 3. हेमवत—ऐरण्यवत,
4. महाविदेह क्षेत्र। अर्थात् देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे के समान। हरिवास रम्यकृवास क्षेत्र में दूसरे आरे के समान। हेमवत—ऐरण्यवत क्षेत्र में तीसरे आरे के समान तथा महाविदेह क्षेत्र में चौथे आरे के समान काल (स्थिति) सदा—सर्वदा रहता है, इस कारण से ये चारों ‘पलिभाग’ के नाम से जाने जाते हैं। इसी कारण से इन चारों को नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल के विभाग भी कहे जाते हैं।

जिस काल में जीवों के आयुष्य, बल, शरीर आदि में उत्तरोत्तर कमी हो, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। जिस काल में आयुष्य, बल, शरीरादि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दोनों में प्रत्येक का काल दस कोटाकोटि सागरोपम का होता है। ये दोनों प्रकार के काल छह—छह आरों के रूप में पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्र में ही होते हैं। जिस काल में भावों की हानि—वृद्धि न हो, सदा एक सा काल रहे, उसे नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

## 13. गति द्वारा

नियंत्रा	जघन्य गति	उत्कृष्ट गति
1. पुलाक	पहला देवलोक	आठवाँ देवलोक
2. बकुश, प्रतिसेवना	पहला देवलोक	बारहवाँ देवलोक
3. कषाय कुशील	पहला देवलोक	अनुत्तर विमान
4. निर्गन्थ	पाँच अनुत्तर विमान में जाते हैं।	
5. स्नातक	मोक्ष में जाते हैं।	

	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
1. पुलाक	पृथक्त्व पल्योपम	18 सागरोपम
2. बकुश, प्रतिसेवना	पृथक्त्व पल्योपम	22 सागरोपम
3. कषाय कुशील	पृथक्त्व पल्योपम	33 सागरोपम
4. निर्गन्थ	अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 सागरोपम
5. स्नातक	सादि-अनन्त।	

### पदवी-

- पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील आराधक हो तो चार पदवी (अहमिन्द्र छोड़कर) में से एक पदवी पावे।
- कषाय कुशील आराधक हो तो पाँच पदवी में से एक पदवी पावे।
- निर्गन्थ एक अहमिन्द्र की पदवी पावे।
- स्नातक मोक्ष में ही जाता है।
- ये सभी नियंत्रे विराधक हो तो चारों गतियों में कहीं भी उत्पन्न हो सकते हैं।

## ज्ञातव्य-

यहाँ आराधक साधु की अपेक्षा गति, स्थिति, पदवी का वर्णन किया गया है। पुलाक लब्धि वाला साधु पुलाकपने में न तो आयुष्य का बन्ध करता है और न ही मरण को प्राप्त होता है, अतः उसकी न गति होती है, न स्थिति। परन्तु पुलाकपने को छोड़कर जब कषाय कुशीलादि में आ जाते हैं, उस समय उनके पास पुलाक लब्धि तो रहती है, प्रयोग नहीं होता। मूलभाव एवं पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसकी गति एवं स्थिति दोनों मानी जाती है। जिसने पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के बाद उसकी आलोचना आदि करके शुद्धि कर ली है, वह आराधक बन जाता है और कषाय कुशीलपन को प्राप्त कर यदि अन्तर्मुहूर्त में ही काल कर जाये तो उसका मरण, पुलाक का मरण माना जाता है, इसी अपेक्षा से उसकी गति और स्थिति बतलाई है। यदि अन्तर्मुहूर्त बाद काल करे तो कषायकुशील का ही मरण माना जाता है, न कि पुलाक साधु का।

आराधक पुलाक जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट आठवें देवलोक तक जाता है। लब्धि प्रयोग की आलोचना नहीं करने पर विराधक बन जाते हैं, अतः वे चारों गतियों में जा सकते हैं।

बकुश और प्रतिसेवना कुशील साधु यदि पूर्व में लगे हुए दोषों की आलोचना कर लेते हैं तो वे आराधक माने जाते हैं। जब तक पूर्वकृत दोषों की आलोचना नहीं करे तब तक शुद्ध संयम का वर्तमान में पालन करने पर भी वे विराधक रह जाते हैं। यहाँ पर जो गति-स्थिति-पदवी बतलाई हैं, वह आराधक की अपेक्षा से समझना चाहिए।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल और अहमिन्द्र ये पाँच मोटी पदवियाँ मानी गई हैं। बारहवें देवलोक तक प्रारंभ की चार पदवियाँ होती हैं।

नवग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में एक मात्र अहमिन्द्र की पदवी पाई जाती है। कषाय कुशील, मूलगुण-उत्तरगुण में दोष नहीं लगते, इसीलिए आराधक होते हैं, परन्तु संज्वलन कषाय के उदय से परिणामों की धारा में उतार-चढ़ाव आने पर विराधक हो सकते हैं।

निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थपने में तो आराधक ही होता है, परन्तु निर्ग्रन्थ अवस्था से नीचे (कषाय कुशील) के गुणस्थानों में आने पर वैमानिक के अलावा अन्य स्थानों का आयुष्य भी बांध सकता है, कोई विराधक भी हो जाता है तथा अन्य गतियों में भी जा सकता है। उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ 11वें गुणस्थान में रहते यदि काल करते हैं तो पाँच अनुत्तर विमान में ही जाते हैं, इसलिए एक अहमिन्द्र की पदवी ही पाते हैं। यद्यपि प्रथम तीन संहनन वाले मनुष्य उपशम श्रेणि कर सकते हैं, किंतु जो वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले होते हैं, वे ही मरण को प्राप्त कर पाँच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते हैं। जो ऋषभनाराच और नाराच संहनन वाले होते हैं, वे उपशम श्रेणि तो प्राप्त कर लेते हैं, किंतु वे उपशम श्रेणि में रहते मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

आराधक साधु यदि वैमानिक देवलोकों में उत्पन्न होता है तो कम से कम दो पल्योपम की स्थिति तो प्राप्त करता ही है। इसीलिए पुलाक आदि नियंठों में जघन्य स्थिति पृथक्त्व पल्योपम की बतलाई गई है।

## 14. संयम-स्थान छाए

- पुलाकादि चार नियंठों में संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।
- निर्ग्रन्थ, स्नातक में संयम-स्थान एक ही होता है।

### अल्पबहुत्व-

- सबसे कम निर्ग्रन्थ और स्नातक के संयम-स्थान-एक
- उससे पुलाक के संयम-स्थान-असंख्यातगुण।

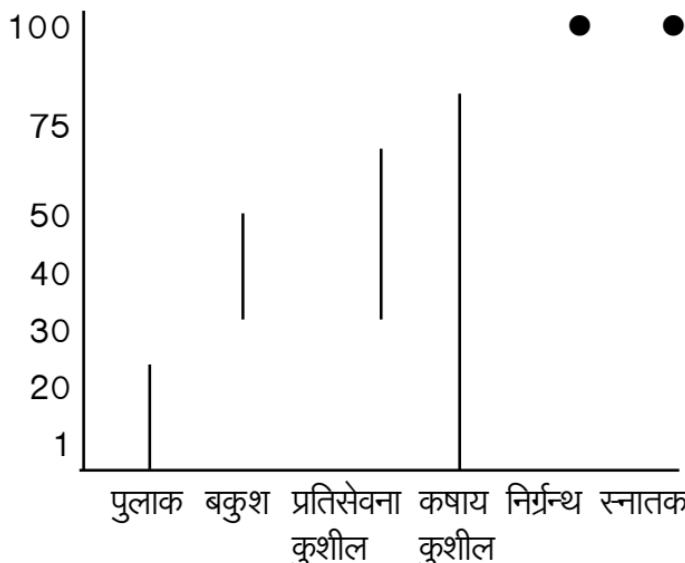
3. उससे बकुश के संयम-स्थान-असंख्यातगुण।
4. उससे प्रतिसेवना के संयम-स्थान-असंख्यातगुण।
5. उससे कषाय कुशील के संयम-स्थान-असंख्यातगुण।

### **ज्ञातव्य-**

संयम अर्थात् चारित्र, स्थान अर्थात् शुद्धि की तीव्रता-मन्दता, अर्थात् चारित्र मोहनीय (कषाय मोहनीय) कर्म के क्षयोपशम उपशम, क्षय की विचित्रता से बनने वाले स्थानों को 'संयम-स्थान' कहते हैं। ये संयम-स्थान असंख्य होते हैं। असंख्यात लोकों में जितने आकाश-प्रदेश होते हैं, उतने असंख्यात संयम-स्थान समझने चाहिए।

निर्ग्रन्थ और स्नातकों में चारित्र मोहनीय कर्म का लेश मात्र भी उदय नहीं होता है, अतः इनका संयम-स्थान एक समान, एक ही माना जाता है। पुलाकादि चार नियंत्रों में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम आदि की विविधता-विचित्रता होने के कारण उनके संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।

संयम स्थानों को निम्न ग्राफ से आसानी से समझा जा सकता है -



एक-एक संयम स्थान में अनन्त पर्याव होते हैं-यह ग्राफ अगले द्वार के स्वस्थान परस्थान समझने में भी सहयोगी है।

## **15. सन्निकर्ष (निकास) छाए**

पुलाकादि छहों नियंता के चारित्र पर्याय अनन्त होते हैं।

1. पुलाक, पुलाक के साथ में तथा कषाय कुशील के साथ में आपस में छट्टाणवडिया (षट्स्थानपतित) है। पुलाक, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से, निर्ग्रन्थ और स्नातक से अनन्त गुण हीन है।
2. बकुश, पुलाक से अनन्तगुण अधिक है। बकुश, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से, कषाय कुशील से छट्टाणवडिया है। बकुश, निर्ग्रन्थ और स्नातक से अनन्तगुण हीन है।
3. प्रतिसेवना कुशील, पुलाक से अनन्तगुण अधिक है। प्रतिसेवना कुशील, प्रतिसेवना कुशील से, बकुश से और कषाय कुशील से छट्टाणवडिया है। प्रतिसेवना कुशील, निर्ग्रन्थ से और स्नातक से अनन्तगुणहीन है।
4. कषाय कुशील, पुलाक से, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से और कषाय कुशील से छट्टाणवडिया है। कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ से और स्नातक से अनन्तगुण हीन है।
5. निर्ग्रन्थ और स्नातक आपस में तुल्य है। निर्ग्रन्थ और स्नातक, पुलाक से, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से और कषाय कुशील से अनन्त गुण अधिक है।

**अल्पबहुत्व-**

1. सबसे थोड़े पुलाक और कषाय कुशील के जघन्य चारित्र-पर्याय।
2. उससे पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुण।
3. उससे बकुश और प्रतिसेवना कुशील के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुण, किंतु बकुश-प्रतिसेवना के परस्पर तुल्य।

4. उससे बकुश के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
5. उससे प्रतिसेवना कुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
6. उससे कषाय कुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
7. उससे निर्गन्ध और स्नातक के चारित्र-पर्याय अनन्त गुणा, किंतु निर्गन्ध और स्नातक के परस्पर तुल्य।

### **ज्ञातव्य-**

चारित्र की पर्यायों को निकर्ष कहते हैं। स्वजातीय, परजातीय के साथ संयोजन करना सन्निकर्ष कहलाता है। संयम-स्थान असंख्यात होते हैं, किंतु पर्यायें अनन्त होती हैं। एक-एक संयम-स्थान में अनन्त पर्यायें होती हैं, असंख्यात संयम-स्थानों में भी अनन्त-अनन्त पर्यायें होती हैं, क्योंकि अनन्त के भी छोटे-बड़े की अपेक्षा से अनन्त भेद हो जाते हैं। संयम-स्थान असंख्यात लोकों में रहे हुए आकाश प्रदेशों के बराबर होते हैं, जबकि पर्यायें अनन्तानन्त होती हैं।

चारित्र अर्थात् सर्वविरति रूप परिणाम, उसके पर्याय अर्थात् तरतमता के आधार पर बने हुए सबसे छोटे भेदों को 'पर्याय' कहते हैं।

पुलाक की तथा कषाय कुशील की जघन्य चारित्र पर्याय अनन्त होते हुए भी सबसे कम होती हैं। वहाँ से जहाँ तक उन दोनों के अध्यवसाय समान होते हैं, वहाँ तक उनके चारित्र पर्याय भी समान होती हैं। बाद में पुलाक, कषाय कुशील की अपेक्षा हीन परिणाम वाला होने से आगे की चारित्र पर्यायों को प्राप्त नहीं कर पाता है, किंतु वही रूप जाता है। इसके बाद असंख्यात स्थान तक आगे अकेला कषाय कुशील ही बढ़ता है।

कषाय कुशील विशुद्धि वाला होने से आगे तक बढ़ जाता है और बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन तीनों की चारित्र पर्यायें कुछ स्तर तक समान हो जाती हैं। कुछ आगे जाकर बकुश की चारित्र पर्यायें

रुक जाती हैं। इसके बाद असंख्यात संयम-स्थानों के बराबर चारित्र पर्यायें प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील की साथ-साथ रहती हैं। फिर प्रतिसेवना कुशील की चारित्र पर्यायें रुक जाती है। इसके बाद असंख्यात संयम स्थान तक के बराबर की चारित्र पर्यायें कषाय कुशील में रहती हैं, फिर कषाय कुशील की पर्यायें भी रुक जाती हैं। इसके बाद अनन्त चारित्र पर्याय को लांघकर निर्गन्ध व स्नातक अपनी चारित्र पर्याय को प्राप्त करते हैं। निर्गन्ध और स्नातक इन दोनों में एक समान चारित्र पर्यायें विद्यमान रहती हैं।

### स्वस्थान-परस्थान सन्निकर्ष-

पुलाक आदि का पुलाक आदि स्व-स्व के साथ सन्निकर्ष-मिलान (तुलना करना) करने को स्वस्थान सन्निकर्ष कहते हैं। पुलाक आदि का, बकुश आदि पर के साथ सन्निकर्ष-मिलान करने को परस्थान सन्निकर्ष कहते हैं।

विशुद्ध संयम सम्बन्धी, विशुद्धतर पर्यायों की अपेक्षा, अविशुद्ध संयम-सम्बन्धी अविशुद्धतर चारित्र-पर्याय 'हीन' कहलाती हैं। शुद्ध पर्यायों की समानता के कारण चारित्र पर्याय परस्पर 'तुल्य' तथा विशुद्धतर पर्यायों से तुलना करने पर 'अधिक' चारित्र पर्याय कहलाती है।

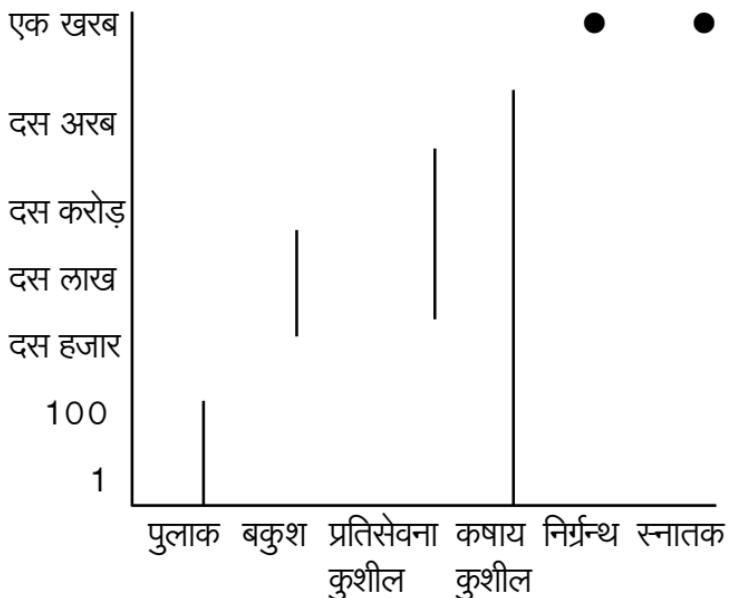
एक पुलाक, दूसरे पुलाक के साथ सजातीय चारित्र पर्यायों से छट्टाणवडिया अर्थात् षट्स्थानपतित हो सकता है। हीन (कमी) की अपेक्षा से षट्स्थान इस प्रकार हैं— 1. अनन्त भाग हीन, 2. असंख्यात भाग हीन, 3. संख्यात भाग हीन, 4. संख्यात गुण हीन, 5. असंख्यात गुण हीन, 6. अनन्त गुण हीन।

अधिक की अपेक्षा षट्स्थान इस प्रकार है— 1. अनन्त भाग अधिक, 2. असंख्यात भाग अधिक, 3. संख्यात भाग अधिक, 4. संख्यात गुण अधिक, 5. असंख्यात गुण अधिक, 6. अनन्त गुण अधिक।

दो चीजों (जीवों) की आपस में तुलना करने पर यदि उनमें अनन्तवें भाग का अन्तर हो तो पहला, असंख्यातवें भाग का अन्तर होने पर दूसरा, संख्यातवें भाग का (दुगुने से कम) अन्तर होने पर तीसरा, दुगुना या दुगुने से अधिक का अन्तर होने पर चौथा, असंख्यात गुणा अन्तर होने पर पाँचवा तथा अनन्त गुणा अन्तर होने पर छठा स्थान बनता है। ये छहों मिलकर षट्स्थान कहलाते हैं। इनमें होने वाली हानि-वृद्धि को षट्स्थान पतित (छट्टाणवडिया) कहते हैं।

यहाँ संयम-स्थान से तात्पर्य चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम की विचित्रता तथा मोहोदय के अभाव रूप अवस्था से लिया गया है। जबकि पर्याय से तात्पर्य संयमी आत्मा की ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि आत्मगुणों में रमणता रूप विशुद्धि से लिया गया है।

छहों नियंठों की चारित्र पर्याय तुलनात्मक स्थिति निम्न ग्राफ से आसानी से समझी जा सकती हैं। असत् कल्पना से यहाँ चारित्र की अनन्तानन्त पर्यायों को एक खरब मानकर प्रस्तुति की गई है।



## **16. योग द्वारा**

- पुलाकादि पाँच नियंता सयोगी होते हैं—योग पावें तीनों।
- स्नातक सयोगी—अयोगी दोनों होते हैं। सयोगी हो तो योग पावें तीनों।

**ज्ञातव्य-**

तेरहवें गुणस्थान तक मन, वचन, काया की प्रवृत्ति रहने के कारण सयोगी माने जाते हैं। पुलाक आदि पाँच नियंता 6 से 12 गुणस्थानवर्ती होने से सयोगी होते हैं। स्नातक 13वें, 14वें गुणस्थान वाले होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में मन, वचन, काया की प्रवृत्ति रहती हैं, अतः वे सयोगी कहलाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योगों का अभाव होने के कारण तथा शैलेषी अवस्था होने के कारण वे अयोगी कहलाते हैं।

## **17. उपयोग द्वारा**

पुलाकादि सभी नियंता साकार और अनाकार दोनों उपयोग वाले होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

उपयोग जीव का लक्षण होने के कारण सभी जीवों में पाया जाता है। उपयोग के साकार—अनाकार की अपेक्षा से दो भेद हैं। साकार उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग। अनाकार उपयोग अर्थात् दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग को विशेष उपयोग तथा दर्शनोपयोग को सामान्य उपयोग भी कहते हैं। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील, निर्गन्ध और स्नातक ये सभी साकार—अनाकार दोनों उपयोग वाले होते हैं। जीव की ज्ञान—दर्शनात्मक प्रवृत्ति को ‘उपयोग’ कहते हैं। प्रज्ञापना के 13वें तथा 18वें पद की टीका के अनुसार छद्मस्थ जीवों का उपयोग अन्तर्मुहूर्त—अन्तर्मुहूर्त में तथा केवलियों का उपयोग 1—1 समय में परिवर्तित होता है, अतः दोनों उपयोग होते हैं।

## **18. कषाय द्वारा**

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील इन तीनों में कषाय पावे-संज्वलन चौक (क्रोध, मान, माया, लोभ)
2. कषाय कुशील में कषाय पावे-संज्वलन की 4, 3, 2, 1
3. निर्गन्थ और स्नातक अकषायी होते हैं। निर्गन्थ उपशांत कषायी तथा क्षीण कषायी दोनों तरह के होते हैं, जबकि स्नातक क्षीण कषायी ही होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

कर्मसिद्धान्त से यह स्पष्ट ही है कि एक समय में तो एक जीव के भी क्रोधादि चार में से एक कषाय का ही उदय रहता है। समुच्चय जीव में चारों का तथा एक ही जीव में बदल-बदल कर चारों का उदय हो सकता है। पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक के जीव सकषायी होते हैं। पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील छठे-सातवें गुणस्थान वाले होने से सकषायी हैं। कषाय कुशील छठे से दसवें गुणस्थान वाले होते हैं। छठे से आठवें गुणस्थान तक तो संज्वलन की चारों कषायों का उदय रहता ही है। नवें गुणस्थान में आने पर जब संज्वलन क्रोध का उदय समाप्त हो जाता है, क्षय या उपशम हो जाता है तो संज्वलन मान, माया, लोभ इन तीनों का ही उदय रहता है। जब संज्वलन मान का भी उदय समाप्त हो जाता है, क्षय या उपशम हो जाता है, तब संज्वलन माया, लोभ इन दो कषायों का ही उदय रहता है। जब परिणामों की विशुद्धि से संज्वलन माया का भी उदय नहीं रहता, तब मात्र संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय शेष रहता है। जब वहीं साधु विशुद्धि से नवें से दसवें गुणस्थान में आता है तब भी संज्वलन लोभ कषाय ही उदय में रहती है। अन्तर इतना है कि दसवें गुणस्थान में बादर संज्वलन लोभ का नहीं, अपितु सूक्ष्म संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय रहता है।

निर्ग्रन्थ अकषायी होते हैं। उपशम श्रेणि वाले हों तो उपशांत कषायी तथा क्षपक श्रेणि वाले हों तो क्षीण कषायी कहलाते हैं। स्नातक तो क्षपक श्रेणि वाले ही बनते हैं, अतः वे तो क्षीण कषायी ही होते हैं।

## 19. लेश्या द्वारा

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में लेश्या पावे तीन-तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या।
2. कषाय कुशील में लेश्या पावे-छहों।
3. निर्ग्रन्थ में लेश्या पावे एक-शुक्ल लेश्या।
4. स्नातक में लेश्या पावे एक-शुक्ल-(परम शुक्ल) लेश्या तथा अलेशी भी होते हैं।

सातव्य-

पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक के सभी जीवों में लेश्या पाई जाती हैं। पुलाक छठे गुणस्थानवर्ती होने पर भी, विशुद्ध प्रयोजन से व अन्य उपाय संभव न होने पर ही पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के कारण उसमें तीन शुभ लेश्याएँ ही मानी जाती हैं। बकुश, प्रतिसेवना कुशील में यद्यपि पूर्वकृत दोष विद्यमान हैं, तथापि वर्तमान में शुद्ध संयम का पालन करने वाले होने से इनमें भी तीन शुभ लेश्याएँ मानी जाती हैं।

कषाय कुशील में छठे गुणस्थानवर्ती में छहों लेश्या, सातवें गुणस्थान वाले में तीन शुभ लेश्या, आठवें-नवें-दसवें गुणस्थान वाले में एक शुक्ल लेश्या होती है। कषाय कुशील में छठे गुणस्थान वालों में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याएँ मानने का कारण अनुशासन करना, संघ व्यवस्था, शासन रक्षा आदि के लिए कदाचित् किंचिद् अशुभ परिणाम आ जाना है व दीर्घकालीन संयम-पर्याय के कारण से भी 6 लेश्या होती हैं। जो कृष्णादि अशुभ लेश्या आती भी

है तो उनमें नीचे के अधिक अशुभ दर्जे नहीं आकर ऊपर के कम अशुभ दर्जे वाले स्थान आते हैं। एक-एक लेश्याओं के प्रत्येक गुणस्थानों में असंख्य-असंख्य भेद (दर्जे) हो सकते हैं। अतः कषाय कुशील में अशुभ लेश्याएँ भी मानी जाती हैं।

निर्गन्थ और स्नातक में एक शुक्ल (परम शुक्ल) लेश्या होती है। आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक एक मात्र शुक्ल (परम शुक्ल) लेश्या ही मिलती है। निर्गन्थों का 11-12 गुणस्थान तथा स्नातकों का 13वाँ-14वाँ गुणस्थान होता है। 14वें गुणस्थान की अपेक्षा स्नातक अलेशी होते हैं।

## 20. परिणाम छाद

1. पुलाकादि चार नियंत्रों में परिणाम पावे तीनों-हीयमान, वर्धमान, अवस्थित।
  - ❖ हीयमान-वर्धमान की स्थिति जघन्य 1 समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।
  - ❖ अवस्थित की जघन्य स्थिति 1 समय, उत्कृष्ट 7 समय।
2. निर्गन्थ में परिणाम पावे दो-वर्धमान और अवस्थित।
  - ❖ वर्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
  - ❖ अवस्थित की जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
3. स्नातक में परिणाम पावे दो-वर्धमान और अवस्थित।
  - ❖ वर्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
  - ❖ अवस्थित की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष की।

### ज्ञातव्य-

प्रज्ञापना के तेरहवें पद में जीव के परिणाम दस प्रकार के बताये गये हैं, उनमें ज्ञान, दर्शन व चारित्र परिणाम भी हैं। यहाँ दसवें गुणस्थान तक

**प्रमुखतः** चारित्र परिणामों से सम्बन्धित जीव परिणामों की चर्चा हुई हैं, आगे के गुणस्थानों में ज्ञान, कषाय, लेश्या आदि परिणाम भी सम्मिलित हैं। चारित्र के भावों को 'परिणाम' कहते हैं। चारित्र मोह कर्म के क्षय/क्षयोपशम से तथा चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के प्रभाव से परिणामों में, संयम के भावों में, विशुद्धि में निरन्तर वृद्धि हो, उसे 'वर्धमान' परिणाम कहते हैं और संयम की विशुद्धि में निरन्तर कमी होती रहे, उसे 'हीयमान' परिणाम कहते हैं। संयम-शुद्धि स्थिर रहे, उसमें किसी प्रकार की घट-बढ़ न हो, उसे 'अवस्थित' परिणाम कहते हैं।

पुलाक में वर्धमान, हीयमान परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय की बतलायी है, वह काल करने की अपेक्षा से नहीं समझना, क्योंकि पुलाक-पुलाकपने में मरण को प्राप्त होता ही नहीं है। मरण के समय तो वह कषाय कुशीलादि रूप में परिणत हो जाता है। पुलाक के परिणाम जब वर्धमान हो, तब यदि एक समय बाद ही संज्वलन कषाय के उदय से बाधित हो जाय तो वर्धमान परिणाम की स्थिति जघन्य 1 समय की घटित होती है। कषायों के उदय से प्रभावित हो जाने के कारण परिणामों में परिवर्तन 1 समय बाद भी हो सकता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तक समझना चाहिए।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील में वर्धमान-हीयमान परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय मरण की अपेक्षा भी घटित हो सकती है, क्योंकि इनका मरण भी संभव है।

छठे व सातवें गुणस्थान में अवस्थित परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय तथा उत्कृष्ट 7 समय की होती है, इसीलिए पुलाकादि चार नियंत्रों में अवस्थित परिणाम की उत्कृष्ट स्थिति 7 समय बतलायी है।

निर्गन्थ में 11वें गुणस्थान वाले निर्गन्थ का मरण संभव है, अतः 11वें गुणस्थान के प्रथम समय में मरण हो जाने की अपेक्षा जघन्य 1 समय

तथा मरण न होने पर उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। 12वें गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणि वाला निर्ग्रन्थ मरण को प्राप्त नहीं होता, अतः जघन्य स्थिति 1 समय न होकर अन्तर्मुहूर्त की होती है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की होती है। 11वें गुणस्थान से जो नीचे गिरते हैं, वे हीयमान परिणाम के कारण से नहीं, न ही लोभ के उदय से वरन् स्थिति पूर्ण हो जाने के कारण से गिरते हैं।

स्नातक में 13वें गुणस्थान की अपेक्षा अवस्थित परिणामों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन क्रोड पूर्व की समझनी चाहिए। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित परिणाम वाला होकर फिर शैलेशी अवस्था को स्वीकार करता है, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त का काल घटित होता है। अवस्थित परिणाम का उत्कृष्ट काल देशोन क्रोड पूर्व वर्ष का इस प्रकार समझना चाहिए—पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले पुरुष को 9 वर्ष बीत जाने पर केवलज्ञान उत्पन्न हो तो नौ वर्ष न्यून पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त अवस्थित परिणाम वाला होकर शैलेशी अवस्था की प्राप्ति तक विचरता है। 11वें गुणस्थान में एक मात्र अवस्थित परिणाम तथा बारहवें व चौदहवें गुणस्थान में एक मात्र वर्धमान परिणाम होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश करते समय तथा योगों का निरोध करते समय अन्तर्मुहूर्त—अन्तर्मुहूर्त तक वर्धमान परिणाम तथा शेष समयों में अवस्थित परिणाम होते हैं।

श्रेणि के गुणस्थानों 8 से 10 तक में क्षपक श्रेणि में मात्र वर्धमान परिणाम ही होता है, 12वें व 14वें गुणस्थान में भी यही एक परिणाम होता है।

उपशम श्रेणि में चढ़ते समय 8 से 10वें गुणस्थान में वर्धमान व उत्तरते समय हीयमान परिणाम ही होता है। अवस्थित-6,7,11,13 गुणस्थान में होता है। वर्धमान 6 से 10 तथा 12 से 14 गुणस्थान में होता है तथा हीयमान 6 से 10 गुणस्थान तक होता है।

नियंठो में गुणस्थानों की अपेक्षा परिणामों की तालिका-

**गुणस्थान परिणाम**

- |          |  |
|----------|--|
| 6, 7     | वर्धमान, हीयमान, अवस्थित तीनों ही  |
| 8, 9, 10 | उपशमश्रेणि-क्षपकश्रेणि में चढ़ने की अपेक्षा-वर्धमान परिणाम<br>उपशमश्रेणि में नीचे गिरने की अपेक्षा-हीयमान परिणाम |
| 11       | अवस्थित परिणाम   |
| 12       | वर्धमान परिणाम   |
| 13       | वर्धमान और अवस्थित परिणाम  |
| 14       | वर्धमान परिणाम   |

यथाख्यात चारित्र में संयम स्थान एक ही है तथा परस्पर में चारित्र के पर्यव भी तुल्य ही है, क्योंकि चारित्र मोह का उदय नहीं है। यहाँ बारहवें गुणस्थान में वर्धमान परिणाम-ज्ञान, लेश्या, योग आदि से तथा योग निरोध व गति आदि बंधनों से छुटकारे के परिणाम चौदहवें गुणस्थान में होने से यहाँ परिणाम अत्यन्त व्यापक अर्थ में है, मात्र चारित्र परिणाम में ही नहीं।

परिणाम द्वार को निम्न तालिका से संक्षेप में इस प्रकार जाना जा सकता है—

संयत	वर्धमान	हीयमान	अवस्थित
पुलाक	✓	✓	✓
बकुश	✓	✓	✓
प्रतिसेवना	✓	✓	✓
कषाय	✓	✓	✓
निर्गन्थ	✓	✗	✓
स्नातक	✓	✗	✓

## **21. बन्ध द्वारा**

1. पुलाक आयुष्य कर्म को छोड़कर सात कर्म बान्धता है।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील 7 अथवा 8 कर्म बांधता है।
3. कषाय कुशील 7 अथवा 8 अथवा 6 कर्म बांधता है।
4. निर्गन्थ एक (साता) वेदनीय कर्म बान्धता है।
5. स्नातक एक (साता) वेदनीय कर्म बान्धता है तथा अबन्धक भी होता है।

**ज्ञातव्य-**

पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से आयुकर्म का बन्ध नहीं करता है, अतः जब तक वह पुलाकपने में रहता है, तब तक आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध करता है। बकुश व प्रतिसेवना कुशील यदि आयु का बन्ध करे तो आठों कर्मों का तथा आयु का बन्ध नहीं करें तब सात कर्मों का बन्ध करते हैं।

कषाय कुशील छठे—सातवें गुणस्थान में जब आयु का बन्ध करे तो उस समय आठों कर्म बान्धते हैं। जब आयु कर्म नहीं बांधे तब सात कर्म बान्धते हैं। सातवें गुणस्थान से ऊपर आयु का बन्ध स्वाभाविक रूप से होता ही नहीं है, अतः आठवें—नवमें गुणस्थान में सात कर्मों का ही बन्ध करते हैं। दसवें गुणस्थान में बादर कषाय का अभाव हो जाने से मोहनीय कर्म भी नहीं बन्धता, अतः आयु और मोहनीय को छोड़कर शेष 6 कर्मों का बन्ध करते हैं।

निर्गन्थ और स्नातक (11, 12, 13वें गुणस्थानवर्ती) एक साता वेदनीय कर्म ही बांधते हैं, क्योंकि वे वीतरागी होते हैं, अतः उनके मात्र ईर्यापथिक आश्रव होता है। स्नातक में जो 14वें गुणस्थान वाले होते हैं वे अयोगी हो जाने से उनके किसी भी कर्म का बन्ध नहीं होता है।

## **22. वेदन (उदय) द्वारा**

- पुलाकादि चार नियंता आठों कर्मों को वेदते (उदय) हैं।
- निर्गन्थ मोहनीय को छोड़कर शेष सात कर्मों का वेदन करते हैं।
- स्नातक चार अघाती कर्मों का ही वेदन करते हैं।

**ज्ञातव्य-**

पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों का उदय (वेदन) रहता है, इसीलिए पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन चारों नियंतों में आठों ही कर्मों का उदय बतलाया है। निर्गन्थ में 11वें, 12वें गुणस्थान में मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का उदय रहता है। स्नातक केवली होने से उनके चार घाती कर्म क्षय हो जाते हैं, इसीलिए उनके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघाती कर्मों का ही उदय रहता है।

उदय दो प्रकार का होता है— 1. प्रदेशोदय, 2. विपाकोदय।

बिना फल दिये कर्म पुद्गलों का आत्मा से अलग हो जाना, अनुभूति में नहीं आना, प्रदेशोदय कहलाता है। फल देकर आत्मा से अलग होना (निर्जरा होना), अनुभूति में आना, विपाकोदय कहलाता है।

विपाकोदय में प्रदेशोदय की नियमा है, जबकि प्रदेशोदय में विपाकोदय की भजना है। यहाँ वेदन से तात्पर्य विपाकोदय से समझना चाहिए।

## **23. उदीरणा द्वारा**

- पुलाक छः कर्म (आयु, वेदनीय को छोड़कर) की उदीरणा करता है।
- बकुश, प्रतिसेवना कुशील 7, 8 अथवा 6 कर्म की उदीरणा करता है।
- कषाय कुशील 7, 8, 6 अथवा 5 कर्म (आयु, वेदनीय, मोहनीय को छोड़कर) की उदीरणा करता है।
- निर्गन्थ 5 अथवा 2 (नाम, गोत्र) कर्म की उदीरणा करता है।
- स्नातक 2 कर्मों की उदीरणा करता है तथा अनुदीरक भी होता है।

## सातव्य-

उदयावलिका के बाहर स्थित कर्म पुद्गलों को प्रयत्न विशेष से नियत समय से पहले खींचकर उदयावलिका में लाना 'उदीरणा' कहलाती है। उदीरणा के लिए चार बातें होना अनिवार्य है— 1. कर्म-प्रकृति का विपाकोदय होना, 2. एक आवलिका से अधिक स्थिति सत्ता में होना, 3. योगों की प्रवृत्ति होना और 4. उदीरणा के योग्य परिणाम होना।

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात, आठ अथवा छह कर्मों की उदीरणा होती है। पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से आयु और वेदनीय इन दो कर्मों की उदीरणा नहीं कर पाते हैं, अतः उनमें 6 कर्मों की ही उदीरणा होती है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील छठे गुणस्थान वालों की अपेक्षा से उनमें 7, 8 अथवा 6 कर्मों की उदीरणा बतलायी है। आयुकर्म की उदीरणा न होने पर सात कर्मों की तथा आयु और वेदनीय इन दोनों कर्मों की उदीरणा न होने पर 6 कर्मों की उदीरणा होती है। आठ में सभी कर्मों की उदीरणा मानी जाती है। सातवें गुणस्थान में तो 6 कर्मों की ही उदीरणा होती है, क्योंकि 7वें गुणस्थान में वेदनीय व आयु की उदीरणा के योग्य परिणाम न होने से इन दोनों कर्मों की उदीरणा नहीं होती।

कषाय कुशील में छठें गुणस्थान वालों में भी बकुश, प्रतिसेवना कुशील के समान 7, 8 अथवा 6 कर्मों की उदीरणा होती है। सातवें-आठवें-नवें गुणस्थान वालों में आयु और वेदनीय को छोड़कर शेष 6 कर्मों की उदीरणा होती है। दसवें गुणस्थान में 6 तथा 5 कर्मों की उदीरणा होती है, क्योंकि क्षपक श्रेणि वाले के जब तक मोहनीय कर्म की स्थिति एक आवलिका से अधिक शेष बचती है, तब तक उसकी उदीरणा होती है। जब एक आवलिका

अथवा उससे कम स्थिति शेष बचती है तब मोहनीय कर्म की उदीरणा रुक जाती है, अतः 5 कर्मों की उदीरणा ही होती है। यदि उपशम श्रेणि वाले दसवें गुणस्थान में होते हैं तो उनके पंचसंग्रह भाग-5 में दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक मोहनीय कर्म की उदीरणा होना माना है।

निर्ग्रन्थ में 5 तथा 2 कर्मों की उदीरणा बतलायी है। इसका कारण यह है कि 12वें गुणस्थान में जब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय इन तीन कर्मों की स्थिति 1 आवलिका ही शेष बचती है, तब इनकी उदीरणा रुक जाती है। इससे पहले पाँच कर्मों की उदीरणा होती है। उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों में 5 कर्मों की तथा क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों में 5 तथा 2 कर्मों की उदीरणा समझनी चाहिए।

स्नातक में 13वें गुणस्थान में रहते नाम व गोत्र, इन दो कर्मों की उदीरणा होती है। 14वाँ गुणस्थान अयोगी होने से उसमें किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं होती, अतः अनुदीरक कहा जाता है।

## **24. उपसम्पदधान द्वाद**

1. पुलाक, पुलाकपने को छोड़ता हुआ दो स्थानों में जाता है— 1. कषाय कुशील और 2. असंयम।
2. बकुश, बकुशपने को छोड़ता हुआ चार स्थानों में जाता है— 1. प्रतिसेवना कुशील, 2. कषाय कुशील 3. असंयम और 4. संयमासंयम।
3. प्रतिसेवना कुशल, प्रतिसेवना कुशीलपने को छोड़ता हुआ चार स्थानों में जाता है— 1. बकुश, 2. कषाय कुशील 3. असंयम और 4. संयमासंयम।
4. कषाय कुशील, कषाय कुशीलपने को छोड़ता हुआ छह स्थानों में जाता है— 1. पुलाक, 2. बकुश, 3. प्रतिसेवना कुशील, 4. निर्ग्रन्थ 5. असंयम और 6. संयमासंयम।

5. निर्गन्थ, निर्गन्थपने को छोड़ता हुआ तीन स्थानों में जाता है— 1. कषाय कुशील, 2. स्नातक और 3. असंयम।
6. स्नातक मोक्ष में ही जाता है।

### **ज्ञातव्य-**

संज्वलन कषायोदय तक दोष लगने पर ही संयम रह सकता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय की सीमा तक दोष लगने पर संयमासंयम तथा अप्रत्याख्यानावरण कषाय की सीमा तक दोष लगने पर असंयम आ जाता है। पुलाकादि निर्गन्थ सीधे—सीधे कहाँ—कहाँ जाते हैं उसका इस द्वार में वर्णन किया गया है। पुलाक लब्धि वाला साधु पहले कषाय कुशील होता है। पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के बाद यदि वह आलोचनादि करके आराधक बन जाता है तो कषाय कुशील में आ जाता है। यदि आलोचनादि नहीं करता है तो विराधक बनकर असंयम में चला जाता है।

बकुश साधु बकुशपने में लगे हुए दोषों का शुद्धिकरण कर लेता है तो वह कषाय कुशील बन जाता है। यदि आलोचनादि से शुद्धिकरण नहीं करता है तो अपने परिणामानुसार प्रतिसेवना कुशील, असंयम और संयमासंयम इन तीनों में से किसी में भी चला जाता है। प्रतिसेवना कुशील भी यदि आराधक बन जाये तो कषाय कुशील में चला जाता है अन्यथा शेष तीन स्थानों—बकुश, असंयम, संयमासंयम में से किसी में भी जा सकता है। प्रतिसेवना कुशील मूलगुण दोष की शुद्धि कर ले, किंतु उत्तरगुण दोष की नहीं करें तो बकुश में जा सकता है।

कषाय कुशील साधु अप्रतिसेवी अर्थात् निर्दोष संयम का पालन करने वाला होता है। अतः निर्दोष संयम पालते—पालते परिणामों की विशेष शुद्धि के कारण उपशम/क्षपक श्रेणि करता हुआ वह निर्गन्थ पद को प्राप्तकर लेता

है। यदि पुलाक लब्धि का प्रयोग करने को तत्पर होता है तो वह पुलाकपने को प्राप्तकर लेता है। जब कषाय कुशील साधु पुलाकपने को प्राप्त करने वाले होते हैं तब अन्तर्मुहूर्त पहले परिणामों में मलिनता आ जाती है। पुलाक लब्धि अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होती है, प्राप्ति के समय जघन्य पर्यव नहीं हो सकते, उत्कृष्ट या मध्यम हो सकते हैं फिर हीयमान भाव से गिरता हुआ जघन्य पर्यव पर पहुँचा, शुद्धि करते ही कषाय कुशील के जघन्य पर्यव संभावित हैं। शुद्धि के भाव से पुलाक में वर्धमान परिणाम आने पर कषाय कुशील में आने पर जघन्य पर्यव नहीं हो सकते। यदि कषाय कुशील साधु संकलेश परिणाम आ जाने के कारण मूलगुण-उत्तरगुण के दोषों का सेवन कर लेता है तो बकुश व प्रतिसेवना कुशील भी बन सकता है, असंयम व संयमासंयम में भी जा सकता है। काल करने पर भी सीधा असंयम में चला जाता है।

निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थपने में आराधक ही होता है। 11वें गुणस्थानवर्ती उपशांत कषायी निर्ग्रन्थ की उपशम की स्थिति पूर्ण हो जाने से यदि वह नीचे गिरता है तो कषाय कुशील बन जाता है। यदि 11वें गुणस्थान में रहते आयु पूर्ण जाने से मरण हो जाता है तो पूर्वबद्धायु के अनुसार पाँच अनुत्तर विमान में सम्यग्दृष्टि देव रूप में उत्पन्न होता है, अतः असंयम में जाना माना गया है। 12वें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय निर्ग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त में अवश्य ही केवली बनता है, अतः वह स्नातक पद को प्राप्त करता हुआ मोक्ष में चला जाता है। 13-14 गुणस्थानवर्ती स्नातक उसी भव में अवश्य ही मोक्ष में जाता है।

## 25. संज्ञा द्वारा

- पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक नोसंज्ञा वाले होते हैं।
- बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील संज्ञा वाले भी तथा नो संज्ञा वाले भी होते हैं। यदि संज्ञा वाले होते हैं तो चारों संज्ञा (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा) पाई जाती हैं।

## स्नातव्य-

आहारादि की तीव्र अभिलाषा को अथवा आसक्ति-भाव को, संज्ञा कहते हैं। जो आहारादि का उपयोग करते हुए भी उनकी आसक्ति से रहित होते हैं, वे 'नो संज्ञा' वाले कहलाते हैं। पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक के जीव संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के अप्रमत्त अनगार संज्ञा रहित अर्थात् नो संज्ञा वाले होते हैं। छठे गुणस्थान में यद्यपि संज्ञा मानी जाती है, फिर भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि छठे गुणस्थान में भी यदि साधु शुभ योगों में प्रवृत्त है, आहारादि की आसक्ति से रहित है तो उस समय वह भी नो संज्ञा वाला ही होता है, अशुभयोगी बनते ही पुनः संज्ञा उत्पन्न हो जाती है।

पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से नो संज्ञा वाला होता है। यद्यपि पुलाक में छठा गुणस्थान होता है, किंतु ज्ञान प्रधान उपयोग वाला होने से, आहारादि की आसक्ति नहीं होने से उसे नो संज्ञा वाला अर्थात् संज्ञा रहित माना है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील ये तीनों छठे गुणस्थान में अशुभ योगों में प्रवृत्त हो, उस समय संज्ञा वाले तथा शुभयोगी होने पर अप्रमत्तता की ओर उन्मुख होने पर नो संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से 10वें गुणस्थान वाले तो संज्ञा रहित ही होते हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक (11 से 14 गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त होने से नो संज्ञा वाले ही होते हैं।

## 26. आहार द्वाद

1. पुलाकादि पाँच नियंता आहारक होते हैं।
2. स्नातक, आहारक-अनाहारक दोनों होते हैं।

## ज्ञातव्य-

आहार मुख्य रूप से चार प्रकार का है- 1. ओज आहार, 2. रोम आहार, 3. कवल आहार और 4. मनोभक्षी आहार। प्रज्ञापना सूत्र के अठाईसवें पद में 2-2 के रूप में भेद- 1. रोम आहार- 24 दंडक, 2. कवल आहार- औदारिक के 5 दंडक। 1. ओज आहार- 24 ही दण्डकों में, 2. मनोभक्षी- देव के 13 दंडक। नारकी में रोम व ओज, 13 प्रकार के देवता में ओज, रोम व मनोभक्षी और एकेन्द्रिय के पाँचों दण्डक में रोम व ओज आहार तथा विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य में रोम, कवल व ओज आहार होता है। ओज आहार- उत्पत्ति के समय में ग्रहण होता है। रोम आहार- त्वचा में रहे हुए छिद्रों से ग्रहण होता है। कवल आहार- अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप से चार प्रकार का होता है। देवता मनोभिलषित वैक्रिय पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं, उसे मनोभक्षी आहार कहते हैं। जो उक्त चारों में से किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं, वे आहारक कहलाते हैं तथा जो जब किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करते, तब वे अनाहारक कहलाते हैं।

जीव अनाहारक या तो अपान्तराल गति में (बाटे बहती अवस्था में पहले, दूसरे व चौथे गुणस्थान में) रहता है, अथवा केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पाँचवें समय में अनाहारक रहता है अथवा चौदहवें गुणस्थान में अनाहारक रहता है। इनके अलावा शेष अवस्थाओं में संसारी जीव आहारक होता है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील व निर्गन्थ ये पाँचों नियंत्रा साधुओं में (6 से 12 गुणस्थान) होते हैं, अतः वे आहारक ही होते

हैं। स्नातक में 13वें गुणस्थान में रहते जब वे केवली समुद्धात करते हैं, तब तीसरे-चौथे-पाँचवें समय में अनाहारक रहते हैं। शेष समयों में आहारक होते हैं। 14वें गुणस्थान में अयोगी अवस्था, निष्कम्प दशा होने से वे अनाहारक ही होते हैं। इस प्रकार से स्नातक को आहारक तथा अनाहारक दोनों माना गया है।

## **27. भव द्वारा**

1. पुलाक और निर्ग्रन्थपना जघन्य एक भव में, उत्कृष्ट तीन भव में आता है।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलपना जघन्य एक भव में उत्कृष्ट 8 भव में आता है।
3. स्नातकपना एक भव में ही आता है, क्योंकि स्नातक उसी भव में मोक्ष जाता है।

**ज्ञातव्य-**

आराधक-विराधक के भेद बिना यहाँ भव-भ्रमण में एक जीव द्वारा प्राप्त किये जाने वाले पुलाकादि निर्ग्रन्थों के भव बताये गये हैं। पुलाक, निर्ग्रन्थ के उत्कृष्ट तीन भव बतलाये हैं। आराधक होने पर बीच में कम से कम दो भव वैमानिक देवलोक के तो अवश्य होते हैं। वैमानिक देवलोक के अधिक भव भी बीच में हो सकते हैं। विराधक होने पर तो बीच में संख्यात-असंख्यात और अनन्त भव चारों गतियों के मिलाकर हो सकते हैं, किंतु उन भवों का यहाँ कथन नहीं किया गया है।

निर्ग्रन्थपना उत्कृष्ट तीन भव में प्राप्त होना बतलाया है, निर्ग्रन्थपना 2 प्रकार से प्राप्त होता है—1. मोह के सर्वथा उपशम से, 2. मोह के क्षय।

मोह के सर्वथा उपशम से जीव को अधिकतम दो भव में तथा क्षय से 1 भव में। इससे यह सिद्ध होता है कि 11वाँ गुणस्थानवर्ती निर्गन्थपना दो भवों में प्राप्त हो सकता है। 11वाँ गुणस्थान दो भव में प्राप्त हो जाने से यह भी सिद्ध होता है कि साधु उपशम श्रेणी दो भवों में कर सकते हैं। 12वाँ गुणस्थानवर्ती निर्गन्थ क्षपक श्रेणि वाला साधु ही बनता है, वह तो उसी भव में स्नातक बनकर मोक्ष में चला जाता है, इसलिए 1 भव में ही प्राप्त होता है। इस प्रकार से अधिकतम 3 भवों में ही निर्गन्थपना प्राप्त होता है।

इसी प्रकार बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील में जो आठ भव बताये हैं, वे आठों भव भी साधुपने के ही गिनना चाहिए। यहाँ भी आराधकपने में तो बीच में कम से कम 7 भव तो वैमानिक के होते ही हैं। विराधक होने पर तो चारों गति में संख्यात-असंख्यात और अनन्त भव तक भी हो सकते हैं, किंतु उनका यहाँ उल्लेख नहीं लिया है। 8वें भव में वह साधु अवश्य मोक्ष में जाता है।

स्नातक पना 13वें-14वें गुणस्थान में होने से वह एक ही भव में प्राप्त होता है तथा वह स्नातक उसी भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

## 28. आकर्ष द्वारा

क्र.सं.	निर्गन्थ	एक भव में	
		जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	1	3
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	1	पृथक् 100
3.	निर्गन्थ	1	2
4.	स्नातक	एक बार	

क्र.सं.	निर्गन्थ	अनेक भवों में	
		जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	2	7
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	2	पृ. 1000
3.	निर्गन्थ	2	5
4.	स्नातक		

### ज्ञातव्य-

यहाँ आकर्ष का अर्थ है—चारित्र की प्राप्ति। चारित्र एक भव, अनेक भव में जितनी बार प्राप्त हो सकता है, उसे आकर्ष कहते हैं। पुलाकपना एक भव में जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 3 बार प्राप्त हो सकता है। इससे यह फलित होता है कि पुलाक लब्धि का प्रयोग एक भव में उत्कृष्ट तीन बार हो सकता है। पुलाकपना अधिक से अधिक तीन भवों में प्राप्त होता है तथा अनेक भवों की अपेक्षा उत्कृष्ट 7 बार प्राप्त होता है। अर्थात् तीन भवों में अधिकतम सात बार हो सकता है। तीन, तीन, एक अथवा तीन, दो, दो अथवा दो, तीन, दो अथवा एक, तीन, तीन अथवा, तीन, एक, तीन इत्यादि विकल्पों से पुलाकपना एक जीव को तीन भवों में सात बार प्राप्त हो सकता है।

जघन्य 1 बार इसलिए कहा जाता है कि एक बार पुलाकपना प्राप्त हुआ, बाद में कषाय कुशील बनकर, निर्गन्थ—स्नातक बनता हुआ मोक्ष में जा सकता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशीलपना एक भव में जघन्य 1 बार उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ बार अर्थात् उत्कृष्ट 900 बार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवों में पृथक्त्व हजार बार प्राप्त होता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशीलपना अधिकतम 8 भवों में ही प्राप्त होता है। अतः पृथक्त्व हजार से तात्पर्य  $900 \times 8 = 7,200$  बार समझना चाहिए। यहाँ

विशेष यह समझना चाहिए कि परस्पर भेदों को प्राप्त करके भी यह आकर्ष घटित हो सकता है। जैसे—कषाय कुशील से पुलाकपना प्राप्त कर शुद्धि करके वापस कषाय कुशील में आकर पुनः पुलाकपना प्राप्त कर सकता है। ऐसे में पुलाक का आकर्ष दो बार माना जायेगा।

निर्ग्रन्थपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार आता है तथा अनेक भवों की अपेक्षा से जघन्य 2 बार, उत्कृष्ट पाँच बार आता है। क्योंकि उपशम श्रेणि एक भव में दो बार हो सकती है, अतः दो बार ग्यारहवाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना एक भव में 2 बार समझना चाहिए। निर्ग्रन्थपना अधिकतम तीन भवों में आता है, वह भी उत्कृष्ट 5 बार ही आता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उपशम श्रेणि दो भवों में ही होती है तथा अधिकतम चार बार ही होती है, तभी चार बार 11वाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना घटित होता है तथा तीसरे भव में जब भी क्षपक श्रेणि करता है, तब उसे 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना एक बार ही आता है, इस प्रकार से 3 भवों में 5 बार निर्ग्रन्थपना आ सकता है।

आगमानुसार (भगवती शतक 9 उद्देशक 31) जिस भव में एक बार उपशम श्रेणि कर लेते हैं, उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं कर सकते। कार्मग्रन्थिक मत से उसी भव में क्षपक श्रेणि करना भी माना जाता है। किंतु जिन्होंने एक भव में दो बार उपशम श्रेणि कर ली है, वे उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं कर सकते। यह बात आगम और कर्मग्रन्थादि व्याख्यासाहित्य एक मत से स्वीकार करते हैं।

स्नातक तो उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं, इसलिए उनके अनेक भव और आकर्ष नहीं होने के कारण उनका कथन नहीं किया गया है।

## 29. काल द्वारा

क्र.सं.	निर्गन्थ	एक भव में
		जघन्य उत्कृष्ट
1.	पुलाक	अंतर्मुहूर्त अंतर्मुहूर्त
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	1 समय दे. क्रोड़ पूर्व
3.	निर्गन्थ	1 समय अंतर्मुहूर्त
4.	स्नातक	अंतर्मुहूर्त दे. क्रोड़ पूर्व

क्र.सं.	निर्गन्थ	अनेक भवों में
		जघन्य उत्कृष्ट
1.	पुलाक	1 समय अंतर्मुहूर्त
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	सदाकाल शाश्वत
3.	निर्गन्थ	1 समय अंतर्मुहूर्त
4.	स्नातक	सदाकाल शाश्वत

### ज्ञातव्य-

पुलाकपने को प्राप्त करने वाला साधु जब तक पुलाक लब्धि का प्रयोग पूर्ण नहीं होता, अन्तर्मुहूर्त काल पूरा नहीं होता तब तक वह पुलाकपने से गिरता नहीं है, मरण को तो पुलाक वैसे ही प्राप्त नहीं होता, इसलिए एक जीव की अपेक्षा पुलाक की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।

अनेक जीवों की अपेक्षा पुलाक की जघन्य स्थिति 1 समय की बतलाई, उसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि एक जीव अपने पुलाकपने में अन्तर्मुहूर्त के अन्तिम समय होता है, उसी समय दूसरा जीव (साधु) पुलाकपने को प्राप्त कर लेता है, तब दोनों पुलाक का सद्भाव एक समय में होता है,

इसलिए जघन्य काल एक समय घटित हो जाता है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त इसलिए कि पुलाक एक समय में पृथक्त्व हजार तक हो सकते हैं। बहुत होते हैं तब भी उनका काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है। अनेक पुलाकों की स्थिति का अन्तर्मुहूर्त बड़ा होता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील की जघन्य स्थिति एक जीव की अपेक्षा जघन्य 1 समय बतलाई है। अर्थात् बकुशादि पर्याय को प्राप्त करने के पहले ही समय में आयु पूर्ण हो जाय, मृत्यु हो जाय तो जघन्य स्थिति 1 समय की घटित होती है। इसमें भी इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम बार कषाय कुशील बनने पर अन्तर्मुहूर्त तो उसे उसी चारित्र पर्याय में रहना ही पड़ता है, अन्तर्मुहूर्त के बाद ही वह बकुश, प्रतिसेवनादि को प्राप्त कर सकता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील बनते ही प्रथम समय में मरण को प्राप्त हो सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि मनुष्य भव में प्रथम बार कषाय कुशील बने और एक समय में ही मरण हो जाय, क्योंकि भगवती शतक 12 उद्देशक 9 में धर्मदेव (साधु) की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त बतलाई है। उसी भव में दूसरी-तीसरी बार कषाय कुशील पना प्राप्त हो, और प्राप्त होने के प्रथम समय में ही मरण हो जाय तो कषाय कुशील की स्थिति जघन्य 1 समय (संचिद्वृण काल) की घटित हो जाती है।

एक क्रोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य यदि नौ वर्ष की उम्र में संयम ग्रहण करले तो उसकी अपेक्षा से बकुश, प्रतिसेवना व कषाय कुशील की उत्कृष्ट स्थिति देशेन क्रोड़ पूर्व वर्ष की होती है।

निर्ग्रन्थ की जघन्य स्थिति 1 समय की मानी है। अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करते ही प्रथम समय में मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो निर्ग्रन्थ की जघन्य स्थिति 1 समय की होती है। उत्कृष्ट काल ग्यारहवें-

बारहवें दोनों गुणस्थानों का, अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए उत्कृष्ट स्थिति निर्ग्रन्थ की अन्तर्मुहूर्त की बतलाई है।

स्नातक में—केवलज्ञान प्राप्त होने के अन्तर्मुहूर्त बाद जीव मोक्ष में जा सकता है, इसलिए जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट स्थिति देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष की होती है, क्योंकि एक क्रोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाले मनुष्य को 9 वर्ष की उम्र में केवलज्ञान प्राप्त हो जाय तो वह देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष 13वें गुणस्थान में स्नातक पर्याय में रह सकता है, उसके बाद वह मोक्ष में जाता है।

अनेक जीव की अपेक्षा बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील शाश्वत माने गये हैं क्योंकि बकुश, प्रतिसेवना कुशील पृथक्त्व सौ करोड़ तथा कषाय कुशील पृथक्त्व हजार करोड़ महाविदेह क्षेत्रादि में सदाकाल मिलते हैं।

स्नातक भी महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व करोड़ सदाकाल मिलते हैं, इसलिए अनेक जीव की अपेक्षा ये भी शाश्वत माने गये हैं।

## **30. अन्तर द्वार**

क्र.सं.	निर्ग्रन्थ	एक जीव की अपेक्षा
		जघन्य      उत्कृष्ट
1.	पुलाक	अन्तर्मुहूर्त देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	अन्तर्मुहूर्त देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल
3.	निर्ग्रन्थ	अन्तर्मुहूर्त देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल
4.	स्नातक	अन्तर्मुहूर्त देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल

क्र.सं.	निर्गन्थ	अनेक जीवों की अपेक्षा	
		जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	1 समय	संख्यात् वर्ष
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	अन्तर नहीं	
3.	निर्गन्थ	1 समय	6 मास
4.	स्नातक	अन्तर नहीं	

### शातव्य-

एक पर्याय (अवस्था) को प्राप्त करने के बाद उसका त्याग करके पुनः उसी पर्याय को जितने समय में प्राप्त कर लेते हैं, उसे 'अन्तर' कहते हैं। अर्थात् उसी पर्याय को दुबार प्राप्त करने में जितना काल लगता है, वह 'अन्तर' कहलाता है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील और निर्गन्थ इन पाँचों नियंठों का एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल का बतलाया है। अर्थात् कम से कम अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः उसी पर्याय को प्राप्त किया जा सकता है। उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार समझना चाहिए कि जैसे—कोई भवी जीव शुक्लपक्षी बनने के अन्तर्मुहूर्तादि कुछ समयों के पश्चात् ही मनुष्य भव में समक्षित प्राप्त कर ले, संयम अंगीकार कर ले, पूर्वों का ज्ञान अर्जित कर पुलाकादि पाँच नियंठाओं को प्राप्त कर लें, किंतु उसका देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन संसार काल बाकी होने से वह स्नातक नहीं बन पाता, मोक्ष में नहीं जा पाता।

संसार परिभ्रमण काल जिसका जितना होता है, उसे उतने ही समय में

पूरा करना पड़ता है। उसमें कभी नहीं हो सकती। परित्त संसारी बनने पर जन्म-मरण के भव सीमित हो सकते हैं, किंतु संसार परिभ्रमण काल में कोई कभी नहीं हो पाती है। इसलिए उसे चारित्र पर्याय से नीचे गिरकर चतुर्गति रूप संसार में जन्म-मरण करना ही पड़ता है। देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल व्यतीत करने हेतु उसे अनन्तकाय रूप वनस्पति में अनन्त जन्म-मरण करने ही पड़ते हैं, फिर वहाँ से निकलकर मनुष्य भव में आकर पुनः पुलाकादि पाँच नियंठों को प्राप्त कर सकते हैं, इसी अपेक्षा से उत्कृष्ट अन्तर घटित होता है।

देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन में अनन्त उत्सर्पिणी, अनन्त अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाता है। यह देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन भी सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन वाला समझना चाहिए।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन-लोक के सभी आकाश प्रदेशों में क्रम से जन्म-मरण करने पर होता है। जैसे-इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के सम भू भाग के बीच में 8 रुचक प्रदेश हैं, जहाँ से दसों दिशाएँ निकलती हैं। कोई जीव पहली बार पहले रुचक प्रदेश पर मरे, फिर दूसरी बार उसके पास के आकाश प्रदेश पर मरे (आगे-पीछे मरे वह गिनती में नहीं लेना है), इस तरह सम्पूर्ण लोक के आकाश प्रदेशों को एक-एक वर्गणापने क्रम से पूरा करे, उसे क्षेत्र से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन काल कहते हैं। (औदारिक आदि समान जाति के पुद्गलों के समूह को वर्गणा कहते हैं।)

निर्गन्थ में जो अन्तर बतलाया गया है वह उपशांत कषाय छद्मस्थ वीतरागी अर्थात् 11वें गुणस्थान वाले, उपशम श्रेणि वाले की अपेक्षा से समझना चाहिए। एक भव में दो बार उपशम श्रेणि कर सकते हैं तथा वह भी कम से कम अन्तर्मुहूर्त के बाद ही दुबारा उसी भव में उपशम श्रेणि कर सकते

हैं, इसलिए निर्ग्रन्थ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का होता है। उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन होने का कारण पहले बतला ही चुके हैं।  
अनेक जीवों की अपेक्षा

पुलाक का अनेक जीवों की अपेक्षा अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात वर्षों का बतलाया है, इससे स्पष्ट होता है कि एक के पुलाकपना प्राप्त करने के बाद अगले ही समय में दूसरा पुलाकपने को प्राप्त कर सकता है। यदि विशेष अन्तर पड़े तो उत्कृष्ट संख्यात वर्षों के बाद तो कोई न कोई साधु पुलाकपने को प्राप्त कर ही लेता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील में अनेक जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं पड़ता, ये महाविदेह क्षेत्रादि में सदाकाल शाश्वत मिल ही जाते हैं। कषाय कुशील का शाश्वतपना छठे-सातवें गुणस्थान की अपेक्षा से समझना चाहिए। आठवें, नवें, दसवें गुणस्थान वालों की अपेक्षा नहीं, क्योंकि आठवें से लेकर दसवाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं मिलता है। इनकी अपेक्षा अंतर पड़ सकता है, उसमें भी उपशम श्रेणि की अपेक्षा पृथक्त्व वर्ष का तथा क्षपक श्रेणि की अपेक्षा 6 मास का उत्कृष्ट अंतर हो सकता है।

निर्ग्रन्थ का अंतर अनेक जीवों की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास का बतलाया है। छः मास का उत्कृष्ट अंतर क्षपक श्रेणि वाले 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ की अपेक्षा समझना चाहिए, वरना तो 11वें गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ का उत्कृष्ट अंतर तो पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का होता है।

स्नातक में 13वें गुणस्थानवर्ती स्नातक पृथक्त्व करोड़ महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल मिलने के कारण, उनका अंतर नहीं बतलाया है। यदि 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक की अपेक्षा से विचार करें तो क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों के समान इनका भी उत्कृष्ट अंतर 6 मास का हो सकता है।

## **31. समुद्घात द्वारा**

1. पुलाक में समुद्घात पावे तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील में समुद्घात पावे पाँच-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस।
3. कषाय कुशील में समुद्घात पावे छह-उपर्युक्त पाँच और छठा आहारक।
4. निर्गन्थ में समुद्घात नहीं होते हैं।
5. स्नातक में समुद्घात पावे एक-केवली समुद्घात।

### **शातव्य-**

सम् + उद् + घात इन तीनों से मिलकर समुद्घात शब्द बनता है। एकीभाव पूर्वक प्रबलता से कर्मों का घात करना, 'समुद्घात' कहलाता है। अथवा मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म-प्रदेशों को बाहर निकालकर तत्सम्बन्धी कर्मों की विशेष निर्जरा करना 'समुद्घात' कहलाता है।

वेदनीय समुद्घात में असाता वेदनीय कर्म की, कषाय समुद्घात में कषाय मोहनीय कर्म की, मारणान्तिक समुद्घात में आयुष्य कर्म की, वैक्रिय समुद्घात में वैक्रिय शरीर नाम कर्म की, तैजस समुद्घात में तैजस शरीर नाम कर्म की, आहारक समुद्घात में आहारक शरीर नाम कर्म की तथा केवली समुद्घात में वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के पूर्वबद्ध दलिकों की करण विशेष से निर्जरा की जाती है।

वेदनीय से लेकर आहारक तक की छहों समुद्घात प्रमादी जीवों में अर्थात् पहले से छठे गुणस्थान तक हो सकती है। केवली समुद्घात, सयोगी केवली भगवन्तों में ही हो सकती है, अन्यत्र नहीं।

पुलाक साधु में वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक ये तीन समुद्घात



निर्ग्रन्थ में 11वाँ, 12वाँ गुणस्थान होता है, पूर्ण अप्रमत्ता होती है, इसलिये उनमें एक भी समुद्घात नहीं होती है। अर्थात् सातवें से लेकर बारहवें गुणस्थानवर्ती साधु-साधियों में कोई भी समुद्घाती नहीं होती। इतना अवश्य है कि छठे गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात पूर्ण किया हुआ साधु निर्ग्रन्थपने में आकर मरण को प्राप्त हो सकता है।

स्नातकों में 13वें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवलियों में किसी-किसी में केवली समुद्घात हो सकती है। सामान्य केवलियों में तथा तीर्थङ्करों में दोनों में ही केवली समुद्घात हो सकती है। आवश्यक चूर्णि के उल्लेखानुसार-

- A. जिन केवलियों की केवलज्ञान प्राप्ति के समय 6 माह अथवा उससे कम आयु शेष रहे, तो वे केवली समुद्घात अवश्य करते हैं।
- B. जिन केवलियों की केवलज्ञान प्राप्ति के समय 6 माह से अधिक आयु शेष रहे तो उनमें कोई-कोई केवली ही केवली समुद्घात करते हैं। अर्थात् जिनके आयुकर्म के दलिकों की अपेक्षा वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म के दलिक अधिक हों तो उनको बराबर करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं।

केवली समुद्घात होने के अंतर्मुहूर्त बाद वह जीव योगों का निरोध करता है तथा अयोगी केवली बनकर चार अघाती कर्मों को क्षय करके सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

## **32. क्षेत्र द्वार**

1. पुलाकादि पाँच नियंठा, लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
2. स्नातक लोक के असंख्यातवें भाग में, अनेक असंख्याता भागों में तथा सम्पूर्ण लोक में भी होता है।



14वें गुणस्थानवर्ती स्नातकों का क्षेत्र तो लोक का असंख्यातवाँ भाग ही होता है, क्योंकि अढ़ाई द्वीप से ही सिद्ध बनते हैं। अढ़ाई द्वीप का क्षेत्र, लोक का असंख्यातवाँ भाग ही होता है।

यदि संहरण किये हुए साधुओं में से कोई अढ़ाई द्वीप के बाहर रहकर केवली (स्नातक) बन भी गये तो उनका वहाँ से मोक्ष नहीं हो सकता। उन्हें कोई न कोई देवतादि अढ़ाई द्वीप में वापस लाता ही है, उसी के बाद में वे सयोगी केवली योगों का निरोध कर, अयोगी केवली बनकर मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं, अतः उनका क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग ही हो पाता है।

### 33. स्पर्शना द्वार

1. पुलाकादि पाँच नियंता लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्शते हैं।
2. स्नातक लोक के असंख्यातवें भाग को, लोक के असंख्याता भगों को तथा सम्पूर्ण लोक को भी स्पर्शते हैं।

शातव्य-

सामान्य रूप से क्षेत्र द्वार व स्पर्शन द्वार एक समान बतलाया गया है, किंतु फिर भी दोनों द्वार अलग-अलग बतलाये हैं, तो इनमें कुछ तो अंतर होना ही चाहिए। उस अंतर को इस प्रकार समझ सकते हैं-

जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहित करके आत्म-प्रदेश रहे हैं, उतने क्षेत्र को 'अवगाहना' कहते हैं तथा अवगाहित क्षेत्र के साथ उसके पार्श्ववर्ती (आजु-बाजु के) प्रदेशों को भी गिनने से जो क्षेत्र बनता है, उसे 'स्पर्शन द्वार' कहते हैं। अवगाहना में लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को आधार माना जाता है, जबकि स्पर्शना में लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई के साथ आजू-बाजू के स्पर्श हुए आकाश प्रदेशों को भी गिना जाता है।

पुलाक आदि पाँचों नियंठों का तथा स्नातक का स्पर्शन द्वार का स्पष्टीकरण क्षेत्र द्वार में दिये गये ज्ञातव्य के समान ही समझना चाहिए। यहाँ लोक की अपेक्षा पृच्छा होने से केवली समुद्घात में स्नातक की सर्व लोक की स्पर्शना कह दी गई, जबकि केवली समुद्घात के चौथे समय में सर्व लोक के साथ अलोक के असंख्यात आकाश प्रदेशों की स्पर्शना भी होती है।

### **34. भाव द्वार**

1. पुलाकादि चारों नियंठे क्षयोपशम भाव में होते हैं।
2. निर्गन्ध औपशमिक तथा क्षायिक भाव में होते हैं।
3. स्नातक क्षायिक भाव में होते हैं।

#### **ज्ञातव्य-**

यहाँ आगमकारों के मतानुसार संयम (चारित्र) पर्याय को धारण किये हुए नियंठों का प्रसंग होने से चारित्र मोहनीय सम्बन्धी भावों की अपेक्षा से ही वर्णन किया गया है। दर्शन मोहनीय के क्षय या उपशम की अपेक्षा कथन नहीं है। औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक इन पाँच भावों में से प्रारंभ के तीन भावों का सीधा सम्बन्ध चारित्र पर्याय से है। औदयिक तथा पारिणामिक भाव तो सभी संसारी जीवों में मिलते ही हैं, किंतु यहाँ उनका कथन नहीं किया गया है। दर्शन मोहनीय के क्षय या उपशम की अपेक्षा कथन नहीं किया गया किंतु चारित्र मोहनीय की अपेक्षा ही इस भाव द्वार में वर्णन हुआ है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन चारों में उपशम, क्षायिक व क्षयोपशम इन तीन भावों में से एक-क्षयोपशम भाव ही मिलता है। क्योंकि छठे से लेकर दसवें गुणस्थान तक चारित्र मोहनीय की

संज्वलन कषाय का क्षयोपशम (मंद विपाकोदय) बना ही रहता है तथा ये चारों नियंत्रे इन गुणस्थानों में ही मिलते हैं।

चारित्र मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम 11वें गुणस्थान में होता है तथा चारित्र मोहनीय का क्षय दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है, तब अगले समय में क्षीण मोह नामक बारहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है, इसलिये उपशम भाव 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ में तथा क्षायिक भाव 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ में माना जाता है।

स्नातक 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, उनमें तीन भावों में से एक क्षायिक भाव ही होता है। यहाँ चारित्र मोह के क्षय की अपेक्षा ही विचारणा हुई है, यद्यपि स्नातक में चारों घातियाँ कर्म क्षय होने वाला क्षायिक भाव भी होता है।

## 35. परिमाण छार

प्रतिपद्यमान (वर्तमान में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा से-

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
2. कषाय कुशील कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
3. निर्ग्रन्थ कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 होते हैं।

4. स्नातक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 108 होते हैं।  
पूर्व प्रतिपन्न (पहले से उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से-
1. पुलाक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
  2. बकुश और प्रतिसेवना कुशील नियमा पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं।
  3. कषाय कुशील नियमा पृथक्त्व हजार करोड़ होते हैं।
  4. निर्गन्ध कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
  5. स्नातक नियमा पृथक्त्व करोड़ होते हैं।

### **ज्ञातव्य-प्रतिपद्मान-**

प्रतिपद्मान (प्राप्त करते हुए) की अपेक्षा सभी नियंते अशाश्वत हैं। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील प्रतिपद्मान की अपेक्षा अशाश्वत है। अर्थात् प्रति समय नये बनना, नये जीव पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील पर्याय को प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि प्राप्त करें तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ तक एक समय में प्राप्त कर सकते हैं। इसमें भी पुलाक की संख्या लगभग 200 से 300 तक तथा बकुश, प्रतिसेवना कुशील की संख्या लगभग 200 से 900 तक समझनी चाहिए।

कषाय कुशील साधु वर्तमान में नये बनना (प्रतिपद्मान), इस अपेक्षा से शाश्वत नहीं है। यदि कभी नये बने तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार एक समय में बन सकते हैं।

निर्ग्रन्थपने को वर्तमान में नया प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि कभी नये निर्ग्रन्थ बने तो एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 तक बन सकते हैं। 162 मानने का कारण यह है कि एक समय में अधिक से अधिक 54 उपशम श्रेणि वाले तथा 108 क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ एक साथ नये बन सकते हैं।

स्नातक भी प्रतिपद्मान की अपेक्षा अर्थात् नये बनने की अपेक्षा शाश्वत नहीं है। यदि स्नातक नये बने जो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 108 क्षपक श्रेणि की अपेक्षा एक समय में बन सकते हैं। एक समय में 108 से अधिक केवली नये नहीं बन पाते हैं।

### पूर्व प्रतिपन्न-

पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् पहले से ही उस-उस पर्याय में रहे हुए की अपेक्षा पुलाक कभी मिलते हैं, कभी नहीं भी मिलते। पुलाक प्रायोग्य प्रयोजन कभी हो, कभी नहीं हो, अतः पुलाक अशाश्वत है। यदि मिलते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार मिल सकते हैं।

बकुश व प्रतिसेवना कुशील पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा महाविदेह आदि क्षेत्र में पृथक्त्व सौ करोड़ सदैव मिलते हैं। पृथक्त्व सौ करोड़ से तात्पर्य बकुश में 200 से 300 करोड़ तथा प्रतिसेवना कुशील में 400 से 600 करोड़ तक समझना चाहिए।

‘कषाय कुशील’ पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व हजार करोड़ सदाकाल मिलते हैं। बकुश व प्रतिसेवना कुशील के क्रमशः

$200 + 400 = 600$  करोड़ झाझेरी या उत्कृष्ट 900 करोड़ झाझेरी हो सकते हैं। इसलिये कषाय कुशील 2000 करोड़ से 8000 करोड़ व अधिकतम 8091 करोड़ तक हो सकते हैं। क्योंकि 900 करोड़ बकुश व प्रतिसेवना कुशील तथा 9 करोड़ स्नातक इनको जोड़ने पर  $900 + 9 = 909$  करोड़ होते हैं। इनको 9000 करोड़ में से घटाने पर कषाय कुशील 8091 करोड़ के लगभग हो जाते हैं। पुलाक व निर्गन्थ भी 900 व 9000 इनमें मिलने से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। अतः कषाय कुशील की उत्कृष्ट संख्या 8000 करोड़ झाझेरी तक हो सकती हैं। ये भी मात्र 6-7 गुणस्थान की अपेक्षा, क्योंकि पूर्व प्रतिपन्न 8, 9, 10 गुणस्थान वाले तो पृथक्त्व सौ से अधिक नहीं मिलते।

‘निर्गन्थ’ पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् पहले से उस पर्याय में रहे हुए की अपेक्षा भी अशाश्वत है, क्योंकि उपशम श्रेणि, क्षपक श्रेणि दोनों ही शाश्वत नहीं मिलती। यदि निर्गन्थ मिलते हैं तो जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 तक) तक एक समय में मिल सकते हैं।

‘स्नातक’ पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा शाश्वत हैं। ये महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल पृथक्त्व करोड़ (2 करोड़ से 9 करोड़ तक) मिलते हैं। इसमें भी यह समझना कि यह शाश्वतपना 13वें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली स्नातक की अपेक्षा है। 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक तो कभी मिलते हैं, कभी नहीं भी मिलते हैं, उनमें उत्कृष्ट 6 माह का विरह (अंतर) भी पड़ सकता है। यदि मिलते भी हैं तो उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ ही मिलते हैं।

## 36. अल्पबहुत्व द्वारा

सभी उत्कृष्ट पद में हो तो

1.	सबसे थोड़े निर्गन्थ-पृथक्त्व सौ।	900
2.	उससे पुलाक संख्यात गुणा-पृथक्त्व हजार।	9,000
3.	उससे स्नातक संख्यात गुणा-पृथक्त्व करोड़।	9,00,00,000
4.	उससे बकुश संख्यात गुणा-पृथक्त्व सौ करोड़।	
		3,00,00,00,000
5.	उससे प्रतिसेवना कुशील संख्यात गुणा-पृथक्त्व सौ करोड़।	
		6,00,00,00,000
6.	उससे कषाय कुशील संख्यात गुणा-पृथक्त्व हजार करोड़।	
		8,90,9,99,90,100
		9,00,0,00,00,000 (नौ हजार करोड़)

विशेषावश्यक भाष्य व पंचसंग्रह आदि में सम्पूर्ण संयत 9,000 करोड़ तक बताये हैं। कभी अन्य नियंते कम होने पर कषाय कुशील अधिक भी हो सकते हैं।

### ज्ञातव्य-

कौनसे नियंते संख्या में अल्प हैं और कौनसे उनकी अपेक्षा संख्या में कितने अधिक हैं, इसकी परस्पर तुलना करना 'अल्पबहुत्व' कहलाती है। छहों प्रकार के नियंतों में सबसे थोड़े निर्गन्थ होते हैं। ये उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ पाये जाते हैं। इनकी अपेक्षा पुलाक लब्धि वाले साधु उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार पाये जाते हैं। दुगुना अथवा दुगुने से अधिक अंतर होने पर संख्यात गुणा माना

जाता है। पृथक्त्व सौ से पृथक्त्व हजार दुगुने से अधिक होने के कारण निर्ग्रन्थ से पुलाक संख्यात गुणा बतलाये गये हैं।

पुलाक से भी स्नातक संख्यात गुणा होते हैं, क्योंकि स्नातक पृथक्त्व करोड़ होते हैं। स्नातक से बकुश संख्यात गुणा है, क्योंकि बकुश पृथक्त्व सौ करोड़ अर्थात् 200 से 300 करोड़ होते हैं। बकुश से प्रतिसेवना कुशील संख्यात गुणा होते हैं। यद्यपि प्रतिसेवना कुशील भी बकुश के समान पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं, किंतु प्रतिसेवना कुशील की संख्या 400 से 600 करोड़ तक मानी जाती है। बकुश से प्रतिसेवना कुशील दुगुने होने से संख्यात गुणा हो जाते हैं।

प्रतिसेवना कुशील से भी कषाय कुशील संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि कषाय कुशील साधु-साध्वी महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व हजार करोड़ (2000 से 8091 करोड़) तक लगभग सदाकाल मिलते हैं।

छहों नियंठों की उपर्युक्त अल्पबहुत्व इनकी उत्कृष्ट संख्या होने पर ही बनती हैं, यदि उत्कृष्ट संख्या नहीं हो, कम हो, अथवा वह नियंठा उस समय बिल्कुल ही नहीं हो तो उस अल्पबहुत्व में अंतर आ जायेगा।

कषाय कुशील की संख्या पृथक्त्व हजार करोड़ होती है तथा सभी नियंठों की मिलाकर संख्या भी पृथक्त्व हजार करोड़ ही होती है। इसका तात्पर्य इस प्रकार समझना कि कषाय कुशील साधु-साध्वियों की संख्या 2000 से 8091 करोड़ के लगभग होती है, जबकि सभी नियंठों की संख्या 9000 करोड़ के लगभग तक हो सकती है। इसमें भी गुणस्थानवर्ती सभी नियंठों की अपेक्षा विचार करें तो सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती सभी नियंठों की

संख्या लगभग 2000-3000 करोड़ होती है तथा छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती सभी नियंत्रों की संख्या लगभग छह-सात हजार करोड़ हो सकती है।

यदि अन्य सभी जघन्य पद में हो व कषाय कुशील उत्कृष्ट पद में हो	
पुलाक, निर्गन्थ	0
स्नातक	2 करोड़
बकुश	200 करोड़
प्रतिसेवना कुशील	400 करोड़
कषाय कुशील	8398 करोड़
<b>कुल योग 9000 करोड़</b>	

अधिकतम कषाय कुशील 8 हजार 3 सौ 98 करोड़ तक संभव है। इसलिये 8 हजार करोड़ ज्ञानेरी उपयुक्त है।

यहाँ सामान्य कथन है, इससे कम भी उत्कृष्ट ज्ञानियों की दृष्टि में हो सकते हैं पर इससे अधिक नहीं हो सकते।



## संजया (संयत) का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 25, उद्देशक 7 में संजया का थोकड़ा इस प्रकार बतलाया गया है-

संयत के 36 द्वार इस प्रकार से कहे गये हैं— 1. प्रज्ञापन, 2. वेद, 3. राग, 4. कल्प, 5. नियंता, 5. प्रतिसेवना, 7. ज्ञान, 8. तीर्थ, 9. लिङ्ग, 10. शरीर, 11. क्षेत्र, 12. काल, 13. गति, 14. संयम स्थान, 15. सन्निकर्ष-चारित्र पर्याय, 16. योग, 17. उपयोग, 18. कषाय, 19. लेश्या, 20. परिणाम, 21. बन्ध, 22. वेदन, 23. उदीरणा, 24. उपसम्पदहान, 25. संज्ञा, 26. आहारक, 27. भव, 28. आकर्ष, 29. स्थिति (काल), 30. अंतर, 31. समुद्घात, 32. क्षेत्र, 33. स्पर्शना, 34. भाव, 35. परिमाण और 36. अल्पबहुत्व।

### 1. प्रज्ञापन द्वार

संयत-चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से उत्पन्न हुए सर्व-विरति परिणाम को संयम (चारित्र) कहते हैं। अथवा जो आठ कर्मों का नाश करें, उसे संयम (चारित्र) कहते हैं। संयम के पालन करने वालों को 'संयत' कहते हैं।

निर्गन्थ में मोहनीय की निवृत्ति की अपेक्षा विवेचन हुआ यहाँ सम्यक् यतना-प्रवृत्ति की अपेक्षा कथन हुआ। निवृत्ति प्रधान प्रवृत्ति से पूर्व में निर्गन्थ

व पश्चात् संयत का अधिकार आया। चारित्र पाँच प्रकार के कहे गये हैं— 1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापनीय, 3. परिहार विशुद्धि, 4. सूक्ष्म संपराय और 5. यथाख्यात चारित्र।

1. **सामायिक चारित्र**—विषय—कषाय और आरंभ—परिग्रहादि सावद्य योग रूप विषम भाव की निवृत्ति तथा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र की साधनामय प्रवृत्ति तथा समभाव की प्राप्ति को सामायिक चारित्र कहते हैं। अर्थात् सर्व सावद्य योगों का तीन करण—तीन योग से (सर्व प्रकार से) त्याग करना सामायिक चारित्र कहलाता है। इसके दो भेद हैं— 1. इत्वरकालिक, 2. यावत्कथिक।

(i) **इत्वरकालिक**—इत्वर अर्थात् अल्पकाल के चारित्र को इत्वरकालिक सामायिक चारित्र कहते हैं। भरत—ऐरवत क्षेत्र में पहले व अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में शिष्यों को सर्व सावद्य योगों का त्याग करा देने के बाद जब तक महाब्रतों में आरोपित नहीं किया जाता, तब तक उन शिष्यों के चारित्र को इत्वरकालिक सामायिक चारित्र कहते हैं। यह जघन्य 7 दिन, मध्यम चार महीने तथा उत्कृष्ट 6 महीने का होता है।

दूसरे शब्दों में वर्तमान में करेमि भन्ते के पाठ से सर्व सावद्य योगों का त्रिकरण—त्रियोग से त्याग कराने रूप जो दीक्षा ग्रहण करवायी जाती है, उसे इत्वरकालिक सामायिक चारित्र (छोटी दीक्षा) कहते हैं।

(ii) **यावत्कथिक**—यावत्कथिक अर्थात् जीवन भर के लिए। जो सामायिक चारित्र जीवन पर्यन्त के लिए स्वीकार किया जाता

है, उसे यावत्कथिक सामायिक चारित्र कहते हैं। यह चारित्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में बीच के 22 तीर्थङ्करों के शासन काल में (दूसरे से तेइसवें तीर्थङ्कर तक के तीर्थ में), महाविदेह क्षेत्र में तथा सभी तीर्थङ्करों की छटमस्थ अवस्था में पाया जाता है। इन्हें सामायिक चारित्र लेने के बाद पुनः महाव्रतों में आरोपित नहीं किया जाता है।

सामायिक चारित्र से सम्पन्न मुनिराजों-महासतियों को 'सामायिक संयत' कहते हैं।

**2. छेदोपस्थापनीय चारित्र-**जिस चारित्र में पहले की दीक्षा पर्याय को छेदकर पाँच महाव्रतों में आरोपित (स्थिर करना) किया जाता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मात्र भरत व ऐरवत क्षेत्र में ही मिलता है और वह भी मात्र प्रथम व अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में ही मिलता है। इसके दो भेद हैं- 1. सातिचार, 2. निरतिचार।

- (i) **सातिचार-**भरत-ऐरवत क्षेत्र में पहले व अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में किसी साधु की दीक्षा पर्याय का छेद (कमी) किया जावे अथवा उसे नई दीक्षा प्रदान की जावे, उसे सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।
- (ii) **निरतिचार-**जड़ता के कारण पुनः आरोपण-जैसे चावल के पौधे को उखाड़कर अन्यत्र रोपा जाता है, इससे पूर्व का पौधा नष्ट नहीं होता, उसे विकसित होने का सुअवसर मिलता है, उसी प्रकार सामायिक चारित्र से महाव्रतों के विभागपूर्वक योग्यता प्रवर्तित होती है। इत्वरकालिक सामायिक चारित्र वाले शिष्यों

को जब बड़ी दीक्षा (महाब्रतों में आरोपण करना) दी जाय तथा तेइसवें तीर्थक्कर के तीर्थ के साधु-साधियों को जब चौबीसवें तीर्थक्कर के तीर्थ में पाँच महाब्रतों में आरोपित किया जावे, उसे निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। जैसे-पाश्वर्नाथ की परम्परा के साधु-साधियों ने भगवान् महावीर के तीर्थ में चतुर्याम धर्म (चार महाब्रत) से पंचयाम (पाँच महाब्रत) धर्म को स्वीकार किया। अर्थात् यावत्कथिक सामायिक चारित्र से निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र स्वीकार किया था। इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में भी समझना।

3. **परिहारविशुद्धि चारित्र-**आयम्बिल के अतिरिक्त आहार का परिहार कर कर्मों की विशेष निर्जरा रूपी शुद्धि की जाय, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इस चारित्र की आराधना नौ साधु एक साथ करते हैं। वे नौ साधु नौ वर्ष की उम्र में दीक्षा अंगीकार करके बीस वर्ष तक गुरु के सान्निध्य में रहकर जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु और उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व का ज्ञान करते हैं। इसके बाद गुरु महाराज की आज्ञा लेकर परिहारविशुद्धि चारित्र अंगीकार करते हैं।

इनमें से चार साधु छः महीने तक तप करते हैं, ये 'पारिहारिक' कहलाते हैं। चार साधु वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, ये 'अनुपारिहारिक' कहलाते हैं। एक साधु वाचना देते हैं। तप करने वाले साधु ग्रीष्म ऋतु में जघन्य उपवास, मध्यम बेला, उत्कृष्ट तेला तप करते हैं। शीत ऋतु में जघन्य बेला, मध्यम तेला, उत्कृष्ट चोला करते हैं। वर्षाकाल में जघन्य तेला, मध्यम चोला, उत्कृष्ट पचोला तप करते हैं। पारणे में आयम्बिल करते हैं।

अनुपारिहारिक भी आयंबिल करते हैं। इसके बाद वैयावृत्य करने वाले साधु भी इस क्रम से छः महीने तक तपस्या करते हैं तथा 6 महीने की तपस्या किये हुए चारों साधु उनकी सेवा करते हैं और वाचना देने वाला वाचना देता रहता है।

चारों साधुओं का 6 माह का तप होने के बाद वाचना देने वाला साधु 6 महीने तक तप करता है, शेष आठ में से कोई एक साधु वाचना देता है तथा सात साधु वैयावृत्य करते हैं। इस प्रकार अठारह महीने में यह परिहार विशुद्धि तप पूरा होता है। परिहार तप पूरा होने पर वे साधु या तो जिनकल्प धारण कर लेते हैं या गच्छ में आ जाते हैं अथवा पुनः परिहारविशुद्धि तप करना प्रारंभ कर देते हैं।

टीकाकारों का कथन है कि एकादि का मरण हो जाने से हुई कमी को गच्छ से नया साधु मिलकर पूर्ति कर सकता है अथवा जितने हैं उतने ही परिहार तप करते रहते हैं। नया आया हुआ साधु जहाँ से औरों का तप चल रहा है, वहाँ से ही वह भी स्वीकार कर लेता है। एक-दो आदि साधु रहने पर यदि जंघाबल क्षीण हो जाय तो परिहारविशुद्धि चारित्र में ही चलते रहते हैं और यदि जंघाबल क्षीण नहीं हो तो जिनकल्प स्वीकार कर लेते हैं।

यह चारित्र केवल छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले ही अंगीकार कर सकते हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र को तीर्थङ्कर भगवान के सान्निध्य में अथवा जिन साधुओं ने तीर्थङ्कर भगवान के सान्निध्य में इस तप को स्वीकार किया है, उनके पास ही अंगीकार किया जाता है, अन्य के पास नहीं। इस चारित्र के दो भेद हैं— 1. निर्विश्यमान, 2. निर्विष्टकायिक।

- (i) निर्विश्यमान—जो साधु परिहार सम्बन्धी तप को स्वीकार करते हैं, उन्हें निर्विश्यमान कहते हैं।

- (ii) निर्विष्टकायिक—जो साधु तप करने के पश्चात् निर्विश्यमान साधुओं की वैयावच्च करते हैं तथा वाचना देते हैं उन्हें निर्विष्टकायिक कहते हैं।

महाविदेह क्षेत्र एवं भरत-ऐरवत में मध्य के 22 तीर्थङ्करों के शासन में ऋजु एवं प्राज्ञ होने से वे गच्छ में रहकर भी इतनी साधना कर लेते हैं, जिससे उनकी आत्मा इतनी सध जाती है कि बिना परिहार तप के भी अधिक निर्जरा कर लेते हैं। जैसे देश में ही अच्छी कमाई हो तो परदेश जाने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये भी महाविदेह क्षेत्र एवं भरत-ऐरवत क्षेत्र के मध्य के 22 तीर्थङ्करों के शासन में परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं होता है।

परिहार विशुद्धि चारित्र को अंगीकार करने वाले साधुगण परिहारविशुद्धि संयत कहलाते हैं।

4. **सूक्ष्म संपराय चारित्र**—जिस चारित्र में सूक्ष्म संपराय अर्थात् संज्वलन लोभ कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है, उसे सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं— 1. विशुद्ध्यमान, 2. संक्लिश्यमान।

- (i) **विशुद्ध्यमान**—क्षपक श्रेणि अथवा उपशम श्रेणि पर चढ़ते हुए साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने के कारण उनका दसवें गुणस्थान में चारित्र विशुद्ध्यमान सूक्ष्म संपराय कहलाता है।
- (ii) **संक्लिश्यमान**—उपशम श्रेणि से गिरते हुए साधु के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं, इसलिये दसवें गुणस्थान में उनका चारित्र संक्लिश्यमान सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है।

सूक्ष्म संपराय चारित्र से सम्पन्न साधु-साध्वियों को ‘सूक्ष्म संपराय संयत’ कहते हैं।

5. **यथाख्यात चारित्र**-कषाय का लेश मात्र भी उदय नहीं होने से ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानवर्ती अतिचार रहित चारित्र को 'यथाख्यात चारित्र' कहते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. उपशांत मोह वीतराग चारित्र, 2. क्षीण मोह वीतराग चारित्र। क्षीण मोह वीतराग चारित्र के दो भेद हैं-(i) छद्मस्थ क्षीण मोह, (ii) केवली क्षीण मोह। केवली क्षीण मोह के दो भेद हैं-(ii) सयोगी केवली, (ii) अयोगी केवली। यथाख्यात चारित्र से सम्पन्न मुनिराजों को 'यथाख्यात संयत' कहते हैं।

सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में छठे से लेकर नवें तक गुणस्थान होते हैं। परिहार विशुद्धि में छठा-सातवाँ गुणस्थान, सूक्ष्म-संपराय में दसवाँ गुणस्थान तथा यथाख्यात चारित्र में ग्यारहवें से लेकर चौदहवें तक गुणस्थान होते हैं।

## 2. वेद द्वारा

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत सवेदी तथा अवेदी दोनों तरह के होते हैं। यदि सवेदी हो तो वेद पावे तीन-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद (पुरुष नपुंसक)। यदि अवेदी हो तो उपशांत वेदी अथवा क्षीण वेदी होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत में वेद पावे दो-पुरुषवेद और नपुंसकवेद (पुरुष नपुंसक)।
3. सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात संयत अवेदी ही होते हैं। अवेदी में भी उपशांतवेदी अथवा क्षीण वेदी होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में सर्वेदी-अवेदी कषाय कुशील के समान तथा परिहारविशुद्धि में वेद पुलाक निर्गन्थ के समान समझना चाहिए। सूक्ष्म संपराय संयत 10वें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील के समान तथा यथाख्यात संयत निर्गन्थ और स्नातक के समान अवेदी समझने चाहिए।

### **3. राग द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय संयत ये चारों सरागी होते हैं।
2. यथाख्यात संयत वीतरागी होते हैं। ग्याहरवें गुणस्थानवर्ती उपशांत कषाय वीतरागी तथा बारहवें-तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं।

**ज्ञातव्य-**

पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक राग का उदय रहता है, अतः सामायिक आदि चारों संयत सरागी तथा यथाख्यात चारित्र वाले संयत वीतरागी माने गये हैं।

### **4. कल्प द्वारा**

1. सामायिक संयत में कल्प पावे 5-स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प और कल्पातीत।
2. छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत में कल्प पावे 3-स्थित, स्थविर और जिनकल्प।
3. सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत में कल्प पावे 3-स्थित, अस्थित और कल्पातीत।

**ज्ञातव्य-**

सामायिक संयत सभी तीर्थङ्करों के शासनकाल में हो सकने के कारण इसमें पाँचों कल्प हो सकते हैं। छेदोपस्थापनीय व परिहारविशुद्धि संयत मात्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में होने के कारण स्थित, स्थविर तथा जिनकल्प ये तीन कल्प ही हो सकते हैं। बीच के बाईंस तीर्थङ्करों के तीर्थ में और महाविदेह क्षेत्र में अस्थित कल्प होता है। वहाँ छेदोपस्थापनीय तथा परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता। इसलिये छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयतों में अस्थित कल्प नहीं होता है। सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात चारित्र सभी तीर्थङ्करों के तीर्थ में होने से स्थित, अस्थित कल्प तथा दसवें से चौदहवें गुणस्थान तक होने से कल्पातीत माने जाते हैं।

पाँच कल्पों की विशेष जानकारी नियंते के कल्प द्वारा से की जा सकती है।

## **5. नियंता द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में नियंता पावे 4-पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील।
2. परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म संपराय में नियंता पावे 1-कषाय कुशील।
3. यथाख्यात संयत में नियंता पावे 2-निर्गन्थ और स्नातक।

**ज्ञातव्य-**

सामायिक व छेदोपस्थापनीय संयत छठे से लेकर नवें गुणस्थानवर्ती होते हैं, इसलिये इनमें पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील में चारों नियंते माने गये हैं। परिहार विशुद्धि व सूक्ष्म संपराय संयत ये दोनों ही अप्रतिसेवी होते हैं, किसी प्रकार के दोष का सेवन नहीं करते हैं, इस कारण से इन दोनों में एक कषाय कुशील नियंता ही माना जाता है। यथाख्यात संयत

में 11 से लेकर 14 तक गुणस्थान होते हैं, अतः 11वें-12वें की अपेक्षा निर्ग्रन्थ तथा 13वें-14वें की अपेक्षा स्नातक का नियंता माना जाता है।

## **6. प्रतिसेवना द्वार**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत प्रतिसेवी तथा अप्रतिसेवी दोनों तरह के होते हैं। यदि प्रतिसेवी हों तो मूलगुण तथा उत्तरगुण किसी में भी दोष लगाने वाले होते हैं। यदि अप्रतिसेवी हों तो मूलगुण-उत्तरगुण किसी में भी दोष नहीं लगाते हैं।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयत अप्रतिसेवी ही होते हैं।

### **ज्ञातव्य-**

सामायिक-छेदोपस्थापनीय संयत मूलगुण व उत्तरगुणों में दोष लगाने पर प्रतिसेवी तथा दोष नहीं लगाने पर अप्रतिसेवी होते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र वाले यद्यपि छठे-सातवें गुणस्थान वाले होते हैं, किंतु फिर भी नौ-दस पूर्वों के ज्ञाता होने से, विशेष तप (परिहार तप) की आराधना में संलग्न रहने से किसी भी प्रकार की लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, किसी भी दोष का सेवन नहीं करते हैं, इसलिये इन्हें अप्रतिसेवी कहा गया है। सूक्ष्म संपराय संयत कषाय कुशील के समान अप्रतिसेवी होते हैं। यथाख्यात संयतों के कषाय का लेश मात्र भी उदय नहीं होने से वे तो अप्रतिसेवी ही होते हैं।

## **7. ज्ञान व श्रुत द्वार**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय इन चारों संयतों में ज्ञान पावे 2,3 अथवा 4-यदि दो ज्ञान हो तो मति व श्रुतज्ञान। यदि तीन ज्ञान हो तो-मति, श्रुत व अवधि अथवा मति,

श्रुत व मनःपर्यव ज्ञान। यदि चार ज्ञान हो तो—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यवज्ञान।

2. यथाख्यात संयत में ज्ञान पावें—1,2,3,4. 1 ज्ञान हो तो केवलज्ञान। 2,3 अथवा 4 ज्ञान सामायिकादि संयत के समान समझना।

### श्रुत की मात्रा-

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय तथा सूक्ष्म संपराय संयत जघन्य 5 समिति, 3 गुप्ति रूप अष्टप्रवचन माता का तथा उत्कृष्ट 14 पूर्वों का (द्वादशांगी का) अध्ययन करते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का तथा उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दस पूर्व का अध्ययन करते हैं।
3. यथाख्यात संयत जघन्य अष्ट प्रवचन माता का तथा उत्कृष्ट 14 पूर्वों का (द्वादशांगी का) अध्ययन करते हैं तथा श्रुत व्यतिरिक्त (केवलज्ञानी) भी होते हैं।

### ज्ञातव्य-

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतों में जो कषाय कुशील के समान अप्रतिसेवी होते हैं, उनमें मनःपर्यवज्ञान भी हो सकता है, किंतु जो मूल व उत्तरगुणों के प्रतिसेवी होते हैं, उनमें दो अथवा तीन ज्ञान हो सकते हैं, किंतु मनःपर्यवज्ञान नहीं होता। परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म संपराय संयत अप्रतिसेवी होते हैं, अतः उनमें दो, तीन अथवा चार ज्ञान हो सकते हैं। यथाख्यात संयत भी अप्रतिसेवी होते हैं, इसलिये उनमें जो 11वें, 12वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, उनमें दो—तीन अथवा चार ज्ञान हो सकते हैं। जो यथाख्यात संयत 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, वे केवलज्ञानी होने के कारण श्रुत व्यतिरिक्त (श्रुतातीत) होते हैं।

मति, श्रुति, अवधि व मनःपर्यावर्जन ये चारों क्षायोपशमिक ज्ञान कहलाते हैं, ये चारों ज्ञान बारहवें गुणस्थान तक होते हैं, उसके आगे नहीं। 13वें-14वें गुणस्थानवर्ती संयतों में घाती कर्मों का क्षय हो जाने से वे केवलज्ञान वाले होते हैं। केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है अतः केवलज्ञान के प्रकट हो जाने पर चारों क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रहते हैं, इसी कारण से 13वें-14वें गुणस्थान में एक केवलज्ञान ही माना जाता है।

## 8. तीर्थ छाद

1. सामायिक, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयत तीर्थ और अतीर्थ दोनों में होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय व परिहारविशुद्धि संयत तीर्थ में ही होते हैं।

ज्ञातव्य-

सामायिक, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात चारित्र ये तीनों तो प्रत्येक साधक को प्राप्त करने ही होते हैं, तभी वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः ये तीनों संयत तो तीर्थ व अतीर्थ दोनों में मिल जाते हैं। तीर्थ का विच्छेद हो जाने पर साधु अतीर्थ में हो सकते हैं तथा तीर्थङ्कर और प्रत्येक बुद्ध, तीर्थ के बिना सामायिक आदि चारित्र का पालन करते हैं, इसलिये वे भी अतीर्थ में होते हैं।

छेदोपस्थापनीय में शिष्य को महाब्रतों में आरोपित किया जाता है तथा परिहारविशुद्धि चारित्र छेदोपस्थापनीय वालों को ही प्राप्त हो पाता है, इस कारण से छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्धि संयत भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में ही मिलते हैं, अतीर्थ में नहीं।

## **9. लिङ्ग द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयत द्रव्य की अपेक्षा स्वलिङ्गः, अन्यलिङ्ग तथा गृहस्थलिङ्ग में होते हैं तथा भाव की अपेक्षा स्वलिङ्गः में होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत द्रव्य तथा भाव दोनों की अपेक्षा स्वलिङ्गः में ही होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

छेदोपस्थापनीय संयत में अन्यलिङ्गः व गृहस्थलिङ्गः होने का कारण पुलाकादि के समान समझना चाहिए तथा अन्य संयतों में भाव संयम की अपेक्षा अथवा कारण होने पर द्रव्यलिङ्गः की अपेक्षा तीनों लिङ्गः समझने चाहिए। किंतु भाव की अपेक्षा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सम्यक् आराधना रूप स्वलिङ्गः में होते हैं। लिङ्गः द्वारा सम्बन्धी विस्तृत जानकारी नियंते के लिङ्गः द्वारा के ज्ञातव्य से समझ लेनी चाहिए।

परिहार विशुद्धि संयत द्रव्य तथा भाव दोनों की अपेक्षा स्वलिङ्गः में ही होते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र वाले जहाँ विचर रहे हो, वहाँ का राजा यदि कुपित हो जाय तो मारने से अधिक क्या करेगा, ऐसा सोचकर वे संयत संथारा कर लेते हैं अथवा कुपित होने पर राजा द्वारा जो समय-सीमा दी गई हो, उसमें विहार कर जाते हैं, किंतु वे लिङ्गः नहीं बदलते हैं, इसलिये द्रव्य की अपेक्षा भी परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वलिङ्गः (जैन साधु का वेश) में ही मानते हैं।

## **10. शरीर द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में शरीर पावे 3,4 अथवा 5-तीन हो तो औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर। चार हो तो औदारिक,





अथवा दूसरा देव (इन्द्रादि) उसे मरण समय से पहले अढाई द्वीप में वापस ले आता है। उसके बाद ही उस संयत का मरण होता है।

## 12. काल द्वार

1. अवसर्पिणी काल में सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत जन्म व सद्भाव की अपेक्षा 3,4,5वें आरे में होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत जन्म की अपेक्षा 3,4थे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा 3,4,5वें आरे में होते हैं।
3. उत्सर्पिणी काल में पाँचों संयत जन्म की अपेक्षा 2,3,4थे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा 3,4थे आरे में होते हैं।
4. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयत संहरण की अपेक्षा 30 अकर्मभूमि में हो सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत का संहरण नहीं होता है।
5. नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल में (महाविदेह क्षेत्र में) जन्म और सद्भाव की अपेक्षा सामायिक, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयत चौथे पलिभाग में (महाविदेह क्षेत्र में) होते हैं। संहरण की अपेक्षा चारों पलिभाग में (1. देवकुरु-उत्तरकुरु, 2. हरिवास-रम्यकृवास, 3. हेमवत-ऐरण्यवत और 4. महाविदेह क्षेत्र) मिलते हैं।

### ज्ञातव्य-

उत्सर्पिणी काल में पाँचों प्रकार के संयत जन्म की अपेक्षा 2,3,4थे आरे में बतलाया है। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिए यथाख्यात संयतों में 11वें, 12वें गुणस्थानवर्ती का तथा सामान्य केवली बनने वाले संयतों का जन्म तो दूसरे आरे के अंत में हो जाता है, किंतु तीर्थङ्कर का जन्म दूसरे आरे



बन्ध होने रूप आराधक की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि विराधक होने पर तो वे नरकादि सभी गतियों में जा सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत आराधक होने पर भी काल करके नवग्रैवेयकादि में नहीं जा पाते, इस कारण से वे अहमिन्द्र की पदवी प्राप्त नहीं करते हैं।

यथाख्यात चारित्र में भी 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ तो नीचे गिरने पर विराधक हो सकते हैं तथा आयु बन्ध के अनुसार चारों गतियों में जा सकते हैं, आयु बन्धक जीव यदि काल करते हैं तो पाँच अनुत्तर विमान में जाते हैं, किंतु 12, 13, 14वें गुणस्थानवर्ती यथाख्यात संयत तो नियमा उसी भव में मोक्ष में जाते हैं।

## 14. संयम-स्थान द्वारा

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय संयत के संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।
2. यथाख्यात संयत में अजघन्य अनुत्कृष्ट एक ही संयम स्थान होता है।

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़ा यथाख्यात का संयम स्थान एक। उससे सूक्ष्म संपराय के संयम-स्थान असंख्यात गुणा। उससे परिहारविशुद्धि के संयम-स्थान असंख्यात गुणा। उससे सामायिक, छेदोपस्थापनीय के संयम-स्थान परस्पर तुल्य, किंतु परिहारविशुद्धि से असंख्यात गुणा।

**शातव्य-**

यथाख्यात संयतों के मोहनीय कर्म का लेशमात्र भी उदय नहीं रहता है, इसलिये संयम-स्थानों में तरतमता नहीं होती। यही कारण है कि 11वें से लेकर 14वें गुणस्थानवर्ती सभी यथाख्यात संयतों में एक ही प्रकार का संयम-स्थान माना गया है।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय संयत के संयम-स्थान असंख्यात-असंख्यात होते हैं। इनमें में सूक्ष्म संपराय संयम के मात्र दसवाँ गुणस्थान होने से तथा स्थिति भी अंतर्मुहूर्त मात्र होने से संयम स्थान कम है। सूक्ष्म संपराय से परिहारविशुद्धि में संयमस्थान असंख्यात गुणा अधिक है, क्योंकि 29 वर्ष कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक इसमें छठे-सातवें गुणस्थान में रह सकते हैं। परिहारविशुद्धि की अपेक्षा भी सामायिक, छेदोपस्थापनीय नौ वर्ष कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक रहने तथा 6 से 9 तक गुणस्थान मिलने के कारण इनके संयम-स्थान असंख्यात गुणा अधिक हैं।

## **15. सन्निकर्ष (निकास) द्वारा**

1. ‘सामायिक संयत’ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छड्डाणवडिया (षट्स्थानपतित) है। ‘सामायिक संयत’ सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
2. ‘छेदोपस्थापनीय संयत’ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छड्डाणवडिया है। ‘छेदोपस्थापनीय संयत’ सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
3. ‘परिहारविशुद्धि संयत’ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छड्डाणवडिया है। ‘परिहारविशुद्धि संयत’ सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
4. ‘सूक्ष्म संपराय संयत’—सूक्ष्म संपराय संयत से परस्पर कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक हो। जो हीन होवे तो अनन्तगुणा हीन तथा अधिक हो तो अनन्त गुणा अधिक होते हैं। ‘सूक्ष्म संपराय संयत’ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि से अनन्तगुणा

अधिक होता है। 'सूक्ष्म संपराय संयत' यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।

5. 'यथाख्यात संयत' यथाख्यात संयत से परस्पर में तुल्य है। 'यथाख्यात संयत' शेष चारों संयत से अनन्तगुणा अधिक होता है।

### अल्पबहुत्व-

1. सबसे थोड़े सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत के जघन्य चारित्र पर्याय-परस्पर में तुल्य।
2. उससे परिहारविशुद्धि के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
3. उससे परिहारविशुद्धि के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
4. उससे सामायिक, छेदोपस्थापनीय के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय परस्पर तुल्य किंतु परिहारविशुद्धि से अनन्त गुणा।
5. उससे सूक्ष्म संपराय के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
6. उससे सूक्ष्म संपराय के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
7. उससे यथाख्यात के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

### शातव्य-

सन्निकर्ष अर्थात् चारित्र पर्यायों के आधार पर संयोजन करना-तुलना करना। चारित्र-पर्यायें अनन्त होती हैं। इनसे सम्बन्धित विवेचन नियंता के इसी द्वार में देखा जा सकता है। परिहारविशुद्धि चारित्र एक विशेष प्रकार की मध्यम श्रेणी की तपाराधना है। इसलिये इसकी चारित्र पर्यायें सामायिक-छेदोपस्थापनीय की जघन्य चारित्र-पर्यायों से अनन्तगुणी से अधिक, किंतु इनकी उत्कृष्ट चारित्र पर्यायों से अनन्त गुणी हीन मानी गई है।

'सूक्ष्म संपराय संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय तथा परिहारविशुद्धि

संयत से उत्कृष्ट होते हैं, अतः उनकी चारित्र-पर्याय इन तीनों से अनन्त गुणी अधिक मानी है। जबकि यथाख्यात संयत से कम विशुद्धि वाले होने से इनकी अपेक्षा अनन्त गुणी हीन पर्यायें बतलाई हैं। सूक्ष्म संपराय संयत में मात्र साकारोपयोग ही होता है, स्थिति भी अंतर्मुहूर्त की ही होती है तथा इनमें परस्पर में जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यायों में भी अनन्तगुणा अंतर होता है। यथाख्यात संयत में शेष चारों संयतों की अपेक्षा अधिक विशुद्धि होने के कारण चारित्र-पर्यायें अनन्तगुणी अधिक होती हैं। यथाख्यात संयतों में मोहनीय कर्म का बिलकुल भी उदय नहीं होने के कारण इनकी चारित्र पर्यायें अजघन्य-अनुत्कृष्ट अर्थात् एक समान बतलाई गई हैं।

## **16. योग द्वाद**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि तथा सूक्ष्म संपराय संयत सयोगी होते हैं, उनमें योग पावें तीनों ही।
2. यथाख्यात संयत सयोगी और अयोगी दोनों होते हैं। सयोगी होवे तो योग पावें तीनों ही।

### **शातव्य-**

पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक योग होते हैं। सामायिक आदि चार संयत छठे से दसवें गुणस्थान तक वाले होते हैं, इसलिये वे सयोगी होते हैं। मन, वचन और काया ये तीनों योग वाले होते हैं। इनमें भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि तीनों योगों की प्रवृत्ति संयतों में एक साथ हो सकती है, किंतु उपयोग किसी एक योग में ही रहता है। मनयोग के चार भेदों में से किसी एक भेद में, वचनयोग के चार भेदों में से किसी एक भेद में तथा काययोग के सात भेदों में से किसी एक भेद में ही एक समय में प्रवृत्ति हो सकती है। अलग-

अलग समयों की अपेक्षा तो संयत की योग्यतानुसार सभी भेदों में प्रवृत्ति हो ही सकती है।

यथाख्यात संयतों में 11, 12 व 13वें गुणस्थानवर्ती तो सयोगी ही होते हैं, किंतु 14वें गुणस्थान वाले संयत अयोगी होते हैं।

## 17. उपयोग द्वारा

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि तथा यथाख्यात संयत में साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) दोनों उपयोग पावे।
2. सूक्ष्म संपराय संयत में साकार उपयोग ही होता है।

**ज्ञातव्य-**

सूक्ष्म संपराय संयत को छोड़कर शेष सभी संयतों में साकार (ज्ञान) तथा अनाकार (दर्शन) दोनों उपयोग होते हैं, किंतु सूक्ष्म संपराय संयत में मात्र साकार उपयोग ही होता है।

जो भी संयत दसवें गुणस्थान में प्रवेश करते हैं वे साकार उपयोग में ही प्रवेश करते हैं। इस गुणस्थान का स्वभाव ही ऐसा है कि इसमें जब तक रहते हैं, तब तक मात्र साकार उपयोग में ही जीव की प्रवृत्ति रहती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सूक्ष्म संपराय संयत में प्रवृत्ति की अपेक्षा चार ज्ञान रूप साकार उपयोग तथा क्षयोपशम (लब्धि) की अपेक्षा चार ज्ञान, तीन दर्शन ये सात उपयोग होते हैं।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में चार ज्ञान, 3 दर्शन ये सात उपयोग हो सकते हैं। यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वाले में उपर्युक्त सात उपयोग हो सकते हैं, किंतु 13वें, 14वें गुणस्थान वाले में केवलज्ञान, केवलदर्शन ये दो उपयोग ही होते हैं।

## **18. कषाय द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय में संज्वलन कषाय पावे-कदाचित् चारों, कदाचित् तीन-मान, माया, लोभ। कदाचित् दो-माया, लोभ।
2. परिहारविशुद्धि संयत में संज्वलन कषाय पावे-चारों।
3. सूक्ष्म संपराय संयत में संज्वलन कषाय पावे एक-लोभ।
4. यथाख्यात संयत अकषायी होते हैं। उपशांत कषायी अथवा क्षीण कषायी होते हैं।

### **ज्ञातव्य-**

सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र छठे से लेकर नवें गुणस्थान तक होता है, अतः इनमें संज्वलन कषाय के चारों भेद मिलते हैं। 9वें गुणस्थान में जब संज्वलन क्रोध का उपशम अथवा क्षय हो जाता है तब उनमें क्रोध को छोड़कर तीन कषाय (मान, माया, लोभ) का उदय रहता है। जब संज्वलन मान का भी उपशम अथवा क्षय कर देते हैं तब उनमें माया व लोभ ये दो कषाय ही उदय में रहती हैं।

परिहारविशुद्धि संयत में संज्वलन की चारों कषाय तथा सूक्ष्म संपराय संयत में संज्वलन की मात्र लोभ कषाय ही उदय में रहती है। यथाख्यात संयतों में संज्वलन की चारों कषायों का (सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का) उदय नहीं रहता है, इसलिये वे अकषायी होते हैं। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशांत कषाय छट्मस्थ वीतरागी, बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय छट्मस्थ वीतरागी, तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली वीतरागी तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली वीतरागी संयत कहलाते हैं।

## **19. लेश्या द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय में लेश्या पावे-छहों।
2. परिहारविशुद्धि संयत में लेश्या पावे तीन-तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या।
3. सूक्ष्म संपराय संयत में लेश्या पावे एक-शुक्ल लेश्या।
4. यथाख्यात संयत में लेश्या पावे एक-शुक्ल लेश्या और अलेशी भी।

### **ज्ञातव्य-**

सामायिक व छेदोपस्थापनीय संयत में छहों लेश्याएँ मिल सकती हैं, इसमें भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि छठे गुणस्थानवर्ती में छहों, सातवें गुणस्थान वालों में तीन-तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या तथा आठवें, नवें गुणस्थान वालों में एक शुक्ल लेश्या ही होती है। परिहारविशुद्धि संयत में यद्यपि छठा-सातवाँ गुणस्थान होता है, तथापि तप रूप विशेष साधना में संलग्न रहने से उनमें तीन शुभ लेश्या ही होती है। सूक्ष्म संपराय संयत में तो स्वाभाविक रूप से शुक्ल लेश्या ही होती है।

यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वालों में एक शुक्ल लेश्या तथा 13वें गुणस्थान वालों में परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवें गुणस्थान वाले अलेशी (लेश्या रहित) होते हैं।

## **20. परिणाम द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में परिणाम पावे तीन-हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित।  
हीयमान, वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त।  
अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सात समय।
2. सूक्ष्म संपराय संयत में परिणाम पावे दो-वर्धमान और हीयमान।  
हीयमान और वर्धमान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त।

3. यथाख्यात संयत में परिणाम पावे दो-वर्धमान और अवस्थित।  
 वर्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की।  
 अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की।

### ज्ञातव्य-

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत के परिणामों की स्थिति पुलाकादि निर्गन्थों के समान समझनी चाहिए। सूक्ष्म संपराय संयत दसवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। दसवें गुणस्थान में जीव का स्वभाव ही ऐसा रहता है कि वर्धमान और हीयमान ये दो ही परिणाम मिलते हैं। उपशम श्रेणि अथवा क्षपक श्रेणि में चढ़ते समय दसवें गुणस्थान में आने पर वर्धमान परिणाम रहते हैं तथा उपशम श्रेणि में 11वें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान में आने वाले जीवों में हीयमान परिणाम होते हैं।

यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वालों के परिणाम निर्गन्थों के समान तथा 13वें, 14वें गुणस्थान वालों के परिणाम स्नातकों के समान समझने चाहिए। संक्षेप में परिणामों को इस प्रकार समझ सकते हैं-

संयत	वर्धमान	हीयमान	अवस्थित
पुलाक	✓	✓	✓
बकुश	✓	✓	✓
प्रतिसेवना	✓	✓	✓
कषाय	✓	✓	✓
निर्गन्थ	✓	✗	✓
स्नातक	✓	✗	✓

## **21. बन्ध द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत सात अथवा आठ कर्मों को बान्धते हैं।
2. सूक्ष्म संपराय संयत 6 कर्मों (आयु और मोहनीय को छोड़कर) को बान्धते हैं।
3. यथाख्यात संयत 11वें, 12वें, 13वें गुणस्थान वाले 1 सातावेदनीय कर्म को बान्धते हैं। 14वें गुणस्थान वाले अबन्धक होते हैं।

## **22. वेदन द्वारा**

1. सामायिक आदि चार संयत नियमा आठ कर्मों को (कषाय कुशील के समान) वेदते (उदय) हैं।
2. यथाख्यात संयत मोहनीय को छोड़कर सात कर्मों को (11वें, 12वें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थों के समान) तथा चार अघाती कर्मों को (13वें, 14वें गुणस्थान वाले स्नातकों के समान) वेदते हैं।

## **23. उदीरणा द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत 7 (आयु को छोड़कर) अथवा 8 अथवा 6 कर्मों की (आयु और वेदनीय कर्म के बिना) उदीरणा करते हैं।
2. सूक्ष्म संपराय संयत 6 कर्मों की अथवा 5 कर्मों की (मोहनीय को छोड़कर) उदीरणा करते हैं।
3. यथाख्यात संयत 5 कर्मों की अथवा दो कर्मों की (नाम व गोत्र की) उदीरणा करते हैं।

## **ज्ञातव्य-**

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में उदीरणा छठे से 9वें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील के समान समझनी चाहिए। सूक्ष्म संपराय संयत में यदि उपशम श्रेणि वाला है तो दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक मोहनीय कर्म की उदीरणा समझनी चाहिए। यदि वह क्षपक श्रेणि वाला है तो दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म की स्थिति एक आवलिका शेष रहने के पहले-पहले ही मोहनीय की उदीरणा समझनी चाहिए, उसके बाद में मोहनीय कर्म की उदीरणा नहीं होती है। यथाख्यात संयत में 5 कर्मों अथवा दो कर्मों की उदीरणा निर्ग्रन्थ और स्नातकों के समान समझनी चाहिए।

## **24. उपस्थपद-हान द्वारा**

1. ‘सामायिक संयत’ सामायिक चारित्र को छोड़ता हुआ 4 स्थानों में जाता है- 1. छेदोपस्थापनीय, 2. सूक्ष्म संपराय, 3. असंयत, 4. संयतासंयत।
2. ‘छेदोपस्थापनीय संयत’ छेदोपस्थापनीय चारित्र को छोड़ता हुआ 5 स्थानों में जाता है- 1. सामायिक, 2. परिहारविशुद्धि, 3. सूक्ष्म संपराय, 4. असंयत, 5. संयतासंयत।
3. ‘परिहारविशुद्धि संयत’ परिहारविशुद्धि चारित्र को छोड़कर सीधा 2 स्थानों में जाता है- 1. छेदोपस्थापनीय, 2. असंयत।
4. ‘सूक्ष्म संपराय संयत’ सूक्ष्म संपराय चारित्र को छोड़कर सीधा 4 स्थानों में जाता है- 1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापनीय, 3. यथाख्यात, 4. असंयत।
5. ‘यथाख्यात संयत’ यथाख्यात चारित्र को छोड़कर सीधा 3 स्थानों में जाता है- 1. सूक्ष्म संपराय, 2. असंयत, 3. सिद्ध (मोक्ष में)।

## शातव्य-

‘सामायिक संयत’ प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में इत्वरिक सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र को प्राप्त करता है। महाविदेह क्षेत्र में तथा भरत-ऐरवत क्षेत्र में मध्य के 22 तीर्थङ्करों के तीर्थ में यावत्कथिक सामायिक चारित्र वाले छठे से नवं गुणस्थान तक रहते हैं। उसके बाद दसवें गुणस्थान को प्राप्त कर वे सूक्ष्म संपराय चारित्र के धारक बन जाते हैं। मरण की अपेक्षा वे वैमानिकादि में असंयत में चले जाते हैं तथा सामायिक चारित्र से नीचे गिरने पर संयतासंयतपने को भी प्राप्त कर सकते हैं। इन कारणों से सामायिक संयत को उपर्युक्त चार स्थानों को सीधा प्राप्त करना बतलाया जाता है।

छेदोपस्थापनीय संयत सामायिक चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं। भरत-ऐरवत क्षेत्र में पहले तीर्थङ्कर के साथु जब दूसरे तीर्थङ्कर के तीर्थ में प्रवेश करते हैं, तब छेदोपस्थापनीय संयत अवस्था को छोड़कर यावत्कथिक सामायिक चारित्र को प्राप्त कर लेते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत ही परिहारविशुद्धि तप की आराधना कर पाते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत आगे बढ़कर श्रेणि पर आरोहण कर जब दसवें गुणस्थान में आते हैं तो वे सूक्ष्म संपराय चारित्री कहलाते हैं। असंयत व संयतासंयत को पाने का विवरण सामायिक संयत के समान समझना चाहिए।

‘परिहारविशुद्धि संयत’ परिहारविशुद्धि चारित्र को छोड़कर यदि वापस गच्छ में आते हैं तो वे छेदोपस्थापनीय चारित्र को स्वीकार करते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र में रहते हुए यदि मरण को प्राप्त हो जाय तो वैमानिक देवलोकों में जाकर असंयम अवस्था को प्राप्त करते हैं।

सूक्ष्म संपराय संयत जब उपशम श्रेणि से नीचे गिरते हैं तो यदि वे पहले सामायिक चारित्र वाले होते हैं तो सामायिक संयत पने को प्राप्त करते हैं। यदि वे पहले छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले होते हैं तो वे छेदोपस्थापनीय संयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि श्रेणि से ऊपर चढ़े तो यथाख्यात संयतपने को प्राप्त करते हैं और यदि वे मरण को प्राप्त हो जाये तो अनुत्तर वैमानिक देव बनकर असंयत अवस्था को प्राप्त करते हैं।

यथाख्यात संयत यदि उपशम श्रेणि से गिरते हैं तो वे सूक्ष्म संपराय संयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि उपशम श्रेणि में 11वें गुणस्थान में मरण हो जाये तो अनुत्तर वैमानिक देवों में असंयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि क्षपक श्रेणि वाले हो तो स्नातकपने को प्राप्त करके सिद्ध गति में (मोक्ष में) चले जाते हैं।

## 25. संज्ञा द्वारा

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत संज्ञा वाले तथा बिना संज्ञा वाले भी होते हैं।
2. सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत बिना संज्ञा वाले (आहारादि की आसक्ति से रहित) ही होते हैं।

ज्ञातव्य-

छठे गुणस्थानवर्ती अशुभ योगी संयत संज्ञा वाले तथा शुभयोगी संयत बिना संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से लेकर 14वें गुणस्थान वाले सभी प्रकार के संयत आहारादि की आसक्ति से रहित होने के कारण बिना संज्ञा वाले (नो संज्ञोपयुक्त) ही होते हैं।

## **26. आहार द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय ये चारों प्रकार के संयत आहारक होते हैं।
2. यथाख्यात संयत आहारक तथा अनाहारक दोनों तरह के होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

सामायिकादि चारों संयत कषाय कुशील निर्गन्थ के समान आहारक समझने चाहिए। यथाख्यात संयत 11वें, 12वें तथा 13वें गुणस्थान की अपेक्षा आहारक समझना चाहिए। केवली समुद्घात के 3,4,5वें समय की अपेक्षा तथा 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातकों की अपेक्षा अनाहारक समझना चाहिए।

## **27. भव द्वारा**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतपना जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट आठ भवों में आता है।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयतपना जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट तीन भवों में आता है।

**ज्ञातव्य-**

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतपना कषाय कुशील साधु के समान जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट आठ भवों में प्राप्त होता है। आठवें भव में वह संयत अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

परिहारविशुद्धि संयतपना पुलाक साधु के समान उत्कृष्ट तीन भवों में प्राप्त हो सकता है। किंतु तीसरे भव में मोक्ष जाने की भजना है, नियमा नहीं। सूक्ष्म संपराय संयतपना 10वें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील साधु के समान

उत्कृष्ट तीन भवों में प्राप्त हो सकता है। यथाख्यात संयतपना क्षपकश्रेणि की अपेक्षा एक भव में ही प्राप्त होता है, किंतु उपशम श्रेणि की अपेक्षा से 11वें गुणस्थानवर्ती संयतपना दो भवों में ही प्राप्त हो सकता है।

क्षपक श्रेणि की अपेक्षा सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात संयतपना एक भव में ही आता है, क्योंकि वह उसी भव में मोक्ष में चला जाता है। अधिक खुलासा नियंठे के भव द्वारा में देखा जा सकता है।

## 28. आकर्ष द्वारा

1. सामायिक संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ बार प्राप्त होता है। अनेक भवों में जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार (7200) प्राप्त होता है।
2. छेदोपस्थापनीय संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट 120 बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 900 से अधिक तथा 1,000 से कम अर्थात् 960 बार।
3. परिहारविशुद्धि संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट तीन बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 7 बार।
4. सूक्ष्म संपराय संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट चार बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 9 बार।
5. यथाख्यात संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार तथा अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 5 बार प्राप्त होता है।

### ज्ञातव्य-

सामायिक संयतपना एक भव में उत्कृष्ट 900 बार तथा 8 भवों में उत्कृष्ट 7,200 बार प्राप्त हो सकता है। छेदोपस्थापनीय संयतपना एक

भव में उत्कृष्ट 120 बार आता है तथा 8 भवों में  $120 \times 8 = 960$  बार प्राप्त हो सकता है। भावों की तरतमता से ये आकर्ष बन जाते हैं।

परिहारविशुद्धि संयतपना के आकर्ष पुलाक साधु के समान समझने चाहिए। सूक्ष्म संपराय संयत के आकर्ष 10वें गुणस्थान में दो बार उपशम श्रेणि करने वालों की अपेक्षा एक भव में दो बार चढ़ने तथा दो बार उतरने की अपेक्षा चार बार, दूसरे भव में भी दो बार उपशम श्रेणि करने की अपेक्षा चार बार तथा तीसरे भव में क्षपक श्रेणि की अपेक्षा एक बार, इस प्रकार कुल 3 भवों में 9 बार प्राप्त होता है।

यथाख्यात संयतपना 11वें गुणस्थानवर्ती की अपेक्षा एक भव में दो बार उपशम श्रेणि होने से उत्कृष्ट दो बार, दूसरे भव में पुनः दो बार उपशम श्रेणि हो सकने से दो बार, तीसरे भव में क्षपक श्रेणि की अपेक्षा 1 बार, इस प्रकार 3 भवों में कुल 5 बार प्राप्त होता है। विशेष विवरण नियंत्रे के इसी द्वारा में देखा जा सकता है।

## **29. काल द्वारा**

संयत	एक जीव की अपेक्षा
1. सामायिक	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व
2. छेदोपरस्थापनीय	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व
3. परिहारविशुद्धि	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट 29 वर्ष कम करोड़ पूर्व
4. सूक्ष्म संपराय	जघन्य-1 समय, उत्कृष्ट-अंतर्मुहूर्त
5. यथाख्यात	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट-देशोन करोड़ पूर्व

संयत	अनेक जीव की अपेक्षा
1. सामायिक	सदाकाल रहते हैं। (शाश्वत)
2. छेदोपस्थापनीय	जघन्य-250 वर्ष, उत्कृष्ट 50 लाख करोड़ सागरोपम।
3. परिहारविशुद्धि	जघन्य देशेन दो सौ वर्ष (142 वर्ष) उत्कृष्ट देशेन (58 वर्ष कम) दो करोड़ पूर्व
4. सूक्ष्म संपराय	जघन्य- 1 समय, उत्कृष्ट- अंतर्मुहूर्त
5. यथाख्यात	सदाकाल मिलते हैं। (शाश्वत)

### ज्ञातव्य-एक जीव की अपेक्षा -

कर्मभूमिज मनुष्य के भव में यदि कोई प्रथम बार सामायिक चारित्र स्वीकार करें तो कम से कम अंतर्मुहूर्त वह उसी चारित्र पर्याय में रहता ही है। उसके बाद परिणामों की हीनता से वह नीचे के गुणस्थानों में तथा परिणामों की विशुद्धि से ऊपर के गुणस्थानों में जा सकता है। यदि उसी भव में दुबारा-तिबारा सामायिक चारित्र प्राप्त करें और एक समय बाद ही उसका मरण हो जाय उस अपेक्षा से सामायिक संयत का काल जघन्य एक समय होता है। उत्कृष्ट देशेन नो वर्ष कम एक पूर्व कोटि वर्ष होता है। यह काल गर्भ में आने के समय से गिनना चाहिए। यदि जन्म दिन से गणना की जाये तो आठ वर्ष कम करोड़ पूर्व होता है।

उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थङ्कर का तीर्थ 250 वर्ष तक चलता है। उस प्रथम तीर्थङ्कर के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है, इसीलिए इसका जघन्य काल 250 वर्ष का माना है। अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थङ्कर का शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक रहता है, इसीलिए

छेदोपस्थापनीय संयत की उत्कृष्ट स्थिति 50 लाख करोड़ सागरोपम की होती है।

परिहारविशुद्धि संयत का एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय मरण की अपेक्षा से समझना चाहिए। उत्कृष्ट देशोन उनतीस वर्ष कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होता है, क्योंकि पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाले किसी मनुष्य ने देशोन नौ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय होने पर वह परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वीकार कर सकता है। यद्यपि परिहारविशुद्धि चारित्र का काल परिमाण अठारह मास का है तथापि उन्हीं निरंतर रहे परिणामों से वह उसे जीवनपर्यन्त पाले तो देशोन उनतीस वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त रह सकता है।

सूक्ष्म संपराय संयत का जघन्य काल एक समय उपशम श्रेणि वाले के मरण की अपेक्षा से हैं। यदि काल नहीं करे तो अंतर्मुहूर्त तक उस पर्याय में रहता है। क्षपक श्रेणि की अपेक्षा से तो जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों ही काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

यथाख्यात संयत का काल परिमाण 11वें गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणि वाले के मरण की अपेक्षा जघन्य एक समय का होता है, अन्यथा अंतर्मुहूर्त का होता है। उत्कृष्ट काल 13वें गुणस्थान की अपेक्षा देशोन पूर्व कोटि वर्ष का स्नातक के समान समझ लेना चाहिए।

**अनेक जीवों की अपेक्षा-**

अनेक जीवों की अपेक्षा सामायिक चारित्र और यथाख्यात चारित्र शाश्वत माना जाता है, क्योंकि महाविदेहादि क्षेत्रों में ये दोनों प्रकार के संयत सदाकाल मिलते ही हैं। छेदोपस्थापनीय मात्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व

अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन काल में मिलता है। परिहारविशुद्धि चारित्र भी छेदोपस्थापनीय वालों में ही मिलता है, किंतु वह दो पाट तक ही मिलता है, उसके बाद नहीं।

सूक्ष्म संपराय चारित्र सदाकाल मिलना आवश्यक नहीं है। यदि मिले तो जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त तक ही मिलता है, क्योंकि दसवें गुणस्थान वालों में ही यह चारित्र मिलता है और दसवें गुणस्थान की स्थिति इतनी ही होती है।

परिहारविशुद्धि संयतपना जघन्य देशेन दो सौ वर्ष (142 वर्ष) तक रहता है। जैसे कि उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थङ्कर के सान्निध्य में 100 वर्ष की आयु वाला मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र ग्रहण करें और उनके जीवन के अन्तिम समय में उनके पास भी सौ वर्ष की आयु वाला कोई मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र स्वीकार करें। उसके बाद उनके पास फिर कोई उस चारित्र को ग्रहण नहीं कर सकता है। इस तरह दो सौ वर्ष होते हैं। परंतु परिहारविशुद्धि संयम की प्राप्ति 29 वर्ष की आयु हो जाने पर ही होती है, इसलिये 200 वर्ष में से  $29 + 29 = 58$  वर्ष कम कर देने से जघन्य काल 142 वर्ष का होता है। यह काल अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थङ्कर की अपेक्षा से है।

परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व का है। जैसे कि अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्कर के सान्निध्य में करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र अंगीकार करे और उसके जीवन के अन्तिम समय में एक करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि उसके पास यह चारित्र ग्रहण करें। इसके बाद फिर कोई मुनि इस चारित्र को ग्रहण नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में देशेन 2 करोड़ पूर्व तक यह

चारित्र रहता है। क्योंकि दोनों ही अपनी आयु के 29 वर्ष बीतने पर इस चारित्र को ग्रहण करते हैं। प्रत्येक के 29-29 वर्ष कम कर देने से 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व का परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल होता है।

## 30. अंतर द्वार

एक जीव की अपेक्षा से-सामायिकादि पाँचों संयतों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल का होता है।

**अनेक जीव की अपेक्षा से-**

1. सामायिक और यथाख्यात संयत का अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि ये महाविदेहादि में शाश्वत होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत का जघन्य अंतर 63 हजार वर्ष का, उत्कृष्ट 18 कोटाकोटी सागरोपम का।
3. परिहारविशुद्धि संयत का जघन्य अंतर 84 हजार वर्ष का, उत्कृष्ट 18 कोटाकोटी सागरोपम का।
4. सूक्ष्म संपराय संयत का जघन्य अंतर 1 समय का, उत्कृष्ट 6 माह का।

**ज्ञातव्य-**

छेदोपस्थापनीय संयत का जो जघन्य अंतर बतलाया, वह इस प्रकार से समझना चाहिए-अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे तक छेदोपस्थापनीय चारित्र रहता है। उसके बाद छठे आरे में जो इक्कीस हजार वर्ष का होता है और उत्सर्पिणी काल के इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के पहले-दूसरे आरे में छेदोपस्थापनीय चारित्र का अभाव होता है। इस प्रकार  $21,000 + 21,000 + 21,000 = 63,000$  वर्ष का छेदोपस्थापनीय संयतों का जघन्य अंतर होता है।

उत्कृष्ट अंतर 18 कोटाकोटी सागरोपम का इस प्रकार से घटित होता है—उत्सर्पिणी काल के 24वें तीर्थङ्कर के तीर्थ तक छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है, उसके बाद दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण चौथे आरे में, तीन कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण पाँचवें आरे में तथा चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण छठे आरे में तथा इसी प्रकार अवसर्पिणी काल के चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण पहले आरे में, तीन कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण दूसरे आरे में और दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण तीसरे आरे में छेदोपस्थापनीय चारित्र नहीं होता। उसके बाद अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में पिछले भाग में प्रथम तीर्थङ्कर के तीर्थ में छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। इस प्रकार से छेदोपस्थापनीय संयतों का उत्कृष्ट अंतर ( $2+3+4$ ,  $4+3+2 = 18$ ) 18 कोटाकोटी सागरोपम होता है। इसमें थोड़ा काल कम रहता है और जघन्य अंतर में थोड़ा काल बढ़ता है, परंतु वह अल्प होने से यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

परिहारविशुद्धि संयत का जघन्य अंतर 84,000 वर्षों का बतलाया, उसे इस प्रकार समझना चाहिए—अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ और छठा आरा तथा उत्सर्पिणी काल का पहला और दूसरा आरा, ये सभी इककीस—इककीस हजार वर्ष के होते हैं, इन चारों में परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता। यहाँ अन्तिम तीर्थङ्कर के पश्चात् पाँचवें आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र का काल कुछ अधिक और उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वीकार करने से पहले का काल अल्प होने से उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

परिहारविशुद्धि चारित्र का उत्कृष्ट अंतर अठारह कोटाकोटी सागरोपम छेदोपस्थापनीय चारित्र के समान समझना चाहिए। सूक्ष्म संपराय संयत का

अनेक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट अंतर उपशम श्रेणि वालों का पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का तथा क्षपक श्रेणि वालों का उत्कृष्ट अंतर 6 मास का समझना चाहिए। 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थों का उत्कृष्ट अंतर भी अनेक जीवों की अपेक्षा पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का समझना चाहिए।

### **31. समुद्घात द्वाद**

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में समुद्घात पावे 6-(केवली समुद्घात को छोड़कर)
2. परिहारविशुद्धि संयत में समुद्घात पावे 3-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
3. सूक्ष्म संपराय संयत में समुद्घात नहीं।
4. यथाख्यात संयत में समुद्घात पावे एक-केवली समुद्घात।

#### **ज्ञातव्य-**

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में 6 समुद्घात (केवली समुद्घात को छोड़कर) मानी है। ये समुद्घात छठे गुणस्थान वालों में ही माननी चाहिए। क्योंकि 7 से 9 गुणस्थान वालों में अप्रमत्त होने से समुद्घात नहीं होती है।

परिहारविशुद्धि संयत में-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक ये तीन समुद्घात होती हैं। इनमें भी ये छठे गुणस्थान वालों में ही होती हैं। यद्यपि परिहारविशुद्धि चारित्र वालों में वैक्रिय लब्धि हो सकती है, किंतु उत्सुकता, कौतुकता, चंचलता आदि न होने से वे वैक्रिय लब्धि का प्रयोग नहीं करते, अतः उनमें वैक्रिय समुद्घात नहीं होती है।

सूक्ष्म संपराय संयत में अप्रमत्ता होने से कोई समुद्घात नहीं होती। यथाख्यात संयत में भी 11वें, 12वें तथा 14वें गुणस्थान वालों में कोई भी

समुद्घात नहीं होती। 13वें गुणस्थान वालों में किसी-किसी स्नातक में केवली समुद्घात हो सकती है।

## 32. क्षेत्र द्वारा

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत और सूक्ष्म संपराय संयत लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
2. यथाख्यात संयत लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा लोक के बहुत असंख्यात भागों में अथवा सर्व लोक में होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

यथाख्यात संयत जब तेरहवें गुणस्थान में होते हैं, उस समय यदि वे केवली समुद्घात नहीं करके शरीरस्थ होते हैं, तब वे भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं। यथाख्यात संयत प्रायः अढाई द्वीप में ही रहते हैं, अढाई द्वीप लोक का असंख्यातवाँ भाग होने से भी उनका क्षेत्र लोक असंख्यातवाँ भाग ही होता है। जब वे केवली समुद्घात करते हैं तब मन्थान अवस्था में लोक के बहुत असंख्यात भागों में तथा लोकपूरित अवस्था (चौथे समय में) में होते हैं तब सर्व लोक में होते हैं। विस्तृत विवेचन नियंता के इसी द्वार में देख सकते हैं।

## 33. स्पर्शना द्वारा

1. सामायिकादि चार संयत लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
2. यथाख्यात संयत लोक के असंख्यातवें भाग में, अथवा लोक के बहुत असंख्यात भागों में अथवा सर्व लोक में होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

क्षेत्र द्वार के समान ही स्पर्शना द्वार बतलाया है। विशेष खुलासा के लिए नियंता के थोकड़े के इसी द्वार में देखा जा सकता है।

## **34. भाव द्वारा**

1. सामायिकादि चार संयतों में एक क्षयोपशम भाव होता है।
2. यथाख्यात संयत में औपशमिक और क्षायिक भाव होता है।

**ज्ञातव्य-**

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म संपराय संयत ये चारों छठे से लेकर दसवें गुणस्थान तक में होते हैं। अतः कषाय कुशील साधु के समान इन चारों में एक क्षयोपशम भाव ही माना गया है।

यथाख्यात संयत में जो 11वें गुणस्थानवर्ती हैं, उनमें मात्र उपशम भाव होता है। क्षपक श्रेणि वाले यथाख्यात संयतों में (12वें, 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती) एक क्षायिक भाव ही माना गया है। यहाँ समकित की अपेक्षा कथन नहीं मात्र चारित्र की अपेक्षा ही है अन्यथा तो प्रारंभिक 4 में भी समकित की अपेक्षा उपशम या क्षायिक भाव होता है। विस्तृत खुलासा नियंते के थोकड़े के भाव द्वारा में देखना चाहिए।

## **35. परिमाण द्वारा**

प्रतिपद्यमान (वर्तमान में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा से—सामायिकादि पाँचों ही संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं, यदि होते हैं तो—

1. सामायिक संयत एक समय में जघन्य 1,2,3, उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
3. परिहारविशुद्धि संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।

4. सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 (क्षपक श्रेणि में 108 और उपशम श्रेणि में 54) होते हैं।

**पूर्व प्रतिपन्न (पहले से उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से -**

1. सामायिक संयत नियमा पृथक्त्व हजार करोड़ होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं।
3. परिहारविशुद्धि संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
4. सूक्ष्म संपराय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
5. यथाख्यात संयत जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड़ होते हैं।

**ज्ञातव्य-**

प्रतिपद्यमान (वर्तमान समय में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा सभी संयत कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो सामायिक संयत 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार (2,000 से 9,000 के लगभग) हो सकते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 के लगभग) हो सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 300 के लगभग) हो सकते हैं। सूक्ष्म संपराय संयत और यथाख्यात संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 (108 क्षपक श्रेणि वाले तथा 54 उपशम श्रेणि वाले हो सकते हैं।)

पूर्व प्रतिपन्न (पहले से ही उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से सामायिक संयत पृथक्त्व हजार करोड़ (2,000 से 9,000 करोड़ के लगभग) नियमा होते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत कभी होते हैं, कभी नहीं होते, यदि होते हैं तो जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ करोड़ (900 करोड़ के लगभग) होते हैं।

छेदोपस्थापनीय चारित्र वालों का उत्कृष्ट परिमाण प्रथम तीर्थङ्कर के तीर्थ आसरी संभावित होता है। परंतु जघन्य परिमाण बराबर समझ में नहीं बैठता है। क्योंकि पांचवें आरे के अंत में भरतादि दस क्षेत्रों में प्रत्येक क्षेत्र में दो-दो के हिसाब से बीस छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले होते हैं। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि जघन्य परिमाण भी प्रथम तीर्थङ्कर के तीर्थ आसरी ही जानना चाहिए। जघन्य प्रत्येक सौ करोड़ में कुछ कम और उत्कृष्ट प्रत्येक सौ करोड़ से कुछ अधिक होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

परिहारविशुद्धि संयत भी कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार (2,000 से 3,000 के लगभग) होते हैं। सूक्ष्म संपराय भी कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 के लगभग) होते हैं।

यथाख्यात संयत 11वें, 12वें तथा 14वें गुणस्थानवर्ती तो अल्प स्थिति वाले होने से पृथक्त्व सौ ही होते हैं, किंतु 13वें गुणस्थानवर्ती देशोन करोड़ पूर्व वर्ष की लम्बी स्थिति तक वाले होने से तथा महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल शाश्वत रूप से मिलने वाले होने से जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड़ (2 करोड़ से 9 करोड़ के लगभग) होते हैं।

## 36. अल्पबहुत्व द्वारा

1. सबसे थोड़े सूक्ष्म संपराय संयत (पृथक्त्व सौ होने से)
2. उससे परिहारविशुद्धि संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व हजार होने से)
3. उससे यथाख्यात संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व करोड़ होने से)
4. उससे छेदोपस्थापनीय संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व सौ करोड़ होने से)
5. उससे सामायिक संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व हजार करोड़ होने से)

**शातव्य-**

प्रतिपद्यमान और पूर्व प्रतिपन्न इन दोनों प्रकार के संयतों को मिलाने से जो उत्कृष्ट संख्या बनती हैं, उसके आधार से उपयुक्त अल्पबहुत्व बतलाई गई हैं।

सबसे थोड़े सूक्ष्म संपराय संयत होते हैं, क्योंकि वे निर्गन्थ नियंता के तुल्य होने से पृथक्त्व सौ (200 से 900 तक) होते हैं। परिहारविशुद्धि संयत पुलाक लब्धि वालों के समान पृथक्त्व हजार (2,000 से 4,000 तक लगभग) होने से वे सूक्ष्म संपराय से संख्यात गुणा अधिक होते हैं। यथाख्यात संयत पृथक्त्व करोड़ (2 से 9 करोड़ के लगभग) होने से वे परिहार विशुद्धि संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं।

छेदोपस्थापनीय संयत पृथक्त्व सौ करोड़ (200 से 900 करोड़ के लगभग) होने से वे यथाख्यात संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं। सामायिक संयत कषाय कुशील की तरह पृथक्त्व हजार करोड़ (6,000 से 7,000 करोड़ के लगभग) होने से वे छेदोपस्थापनीय संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं।

**सेवम् भन्ते! सेवम् भन्ते!**

(1) प्रज्ञापना द्वारा-(1) पुलाक-निःसार धान्य के समान चारित्र (6ठा गुणस्थान) दो भेद-लविधि पुलाक-चक्रवर्ती आदि की सेना को संघ हित में नष्ट करना।

### आसेवना पुलाक के 5 भेद

ज्ञान	दर्शन	चारित्र	लिंग	यथासूक्ष्म
स्खलना	शंका	मूल-उत्तर गुण में दोष	बार-बार वेश परिवर्तन	मन से दोष लगाना

(2) बकुश-चावलों के पौधों को काट कर पुले बाँधकर ढेर करना-उत्तर गुण में दोष (6-7 गुण.)

(अ) शरीर बकुश-शरीर की विभूषा (ब) उपकरण बकुश-उपकरणों की विभूषा करना।

### दोनों के 5-5 भेद

आभोग	अनाभोग	संवृत्	असंवृत्	यथा सूक्ष्म
जानते हुए	अनजाने में छिपकर दोष	खुलकर दोष आँख, मुख, नाक साफ करना व दोष लगाना	दोष लगाना	लगाना चढ़ार, रजोहरणादि साफ करना

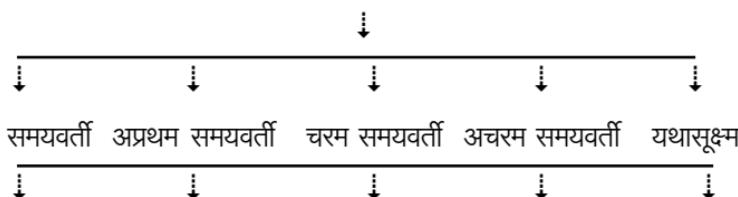
(3) कुशील-उफने हुए चावलों का दृष्टांत (बरसे हुए चावल)-

दो भेद-(i) प्रतिसेवना कुशील, दोष सेवन से चारित्र दूषित करने वाले (6-7 गुण.)

ज्ञान	दर्शन	चारित्र	लिंग	यथासूक्ष्म
(व्याख्यान) ज्ञान से श्रद्धा की मजबूती चारित्र से वेश से मन से अकल्पनीय पदार्थ आजीविका से आजीविका आजीविका आजीविका की इच्छा, तपस्या के फल चलाना चलाना चलाना चलाना की इच्छा करे, यह तपस्वी है, ऐसा सुनकर प्रसन्न होना।				

**(ii) कषाय कुशील-**छिलके सहित चावलों का दृष्टांत, 5 भेद ऊपर की तरह। ज्ञान, दर्शन, चारित्र में दोष नहीं, परंतु संज्वलन कषाय का उदय रहता है केवलज्ञान से पूर्व तीर्थङ्कर भी इसी चारित्र में रहते हैं। इसमें 6 लेश्या हो सकती है। 6 से 10 तक गुणस्थान होते हैं।

**(4) निर्ग्रन्थ-**छिलके रहित चावलों का दृष्टांत (इसमें 11वाँ व 12वाँ गुणस्थान होता है)।



11वें 12वें गुण। प्रथम समय को के प्रथम समय छोड़ शेष समय वाले 11वें 12वें गुण। अंतिम समय को सामन्य रूप से के अंतिम समय छोड़ शेष समय में सभी समयों में वाले वाले वाले रहने वाले रहने वाले

**(5) स्नातक-**शुद्ध, पूर्ण, अखण्ड चावलों का दृष्टांत (13वाँ व 14वाँ गुणस्थान होता है)।

अच्छवी	अशबल	अकर्माश	संशुद्ध	अपरिस्नावी
↓	↓	↓	↓	↓

योगों का निरोध योगों का निरोध दोष रहित, विशुद्ध घाती कर्मों से केवलज्ञान, केवल कर्म बंध के किए हुए, 14वें चारित्रवान, 13वें रहित, 13वें दर्शन के धारक, प्रवाह से रहित, गुणस्थानवर्ती गुणस्थानवर्ती अरिहंत, केवली 14वें गुणवर्ती आदि, 13वें गुणस्थानवर्ती

द्वार	नियंता		संज्ञया
(2) वेद द्वार	पु. ब. प्रति. कषाय कु. निर्ग्रन्थ स्नातक	सवेदी 2 पु., पु. नपु. सवेदी, 3 वेद तीर्णों सवेदी, 3 वेद, अवेदी-उप. व क्षीण वेदी अवेदी-उप. व क्षीण वेदी अवेदी-क्षीण वेदी	परिहार - सामा. छेदो. सूसं., यथा. -
(3) राग सूसं.	पु., ब., प्रति., क.कु. सरागी		सामा., छेदो., परि., यथा.
	निर्ग्रन्थ	उपशांत व क्षीण वीतरागी	-
	स्नातक	क्षीण कषायी वीतरागी	-
(4) कल्प	स्थित अस्थित (2) पु. ब., प्रति. क. कु. नि., स्ना. -	+ + 2 + 2 + 2 + 1 स्थित +	स्थविर जिन, कल्पातीत (3) 1 (स्थ.) 1 (स्थ., जिन) 3 1 (कल्पानीत) 2 (स्थ., जिन)
			- - सामा. सूसं., यथा. छेदो. परि.

(5) चारित्र	पु., ब., प्रति. → क. कु. → नि., स्ना. →	सा., छे., (1-4) यथा.	1-4 क.कु. नि., स्ना.	↔ नियंता सा., छे. ↔ परि., सू. सं. ↔ यथा
(6) प्रतिसेवना	पु., प्रति., बकुश क.कु., नि., स्ना. -	प्रतिसेवी-मूलगुण व उत्तरगुण प्रतिसेवी-उत्तर गुण अप्रतिसेवी प्रतिसेवी-मूलगुण व उत्तरगुण, अप्रतिसेवी	- - परि., सू. सं., यथा. सामा., छेदो.	
(7) ज्ञान	पु., ब. प्रति., क.कु., नि. सू. सं.	कितने-2/3 2/3/4	- -	- सामा., छे., परि.,
	स्नातक	1	-	
	-	1/2/3/4 = (5)	यथा.	
	<b>कितना ज्ञान</b>			
	पु.	जघन्य 9वें पूर्व की 3 आचार वस्तु 9वें पूर्व की 3 आचार वस्तु	उत्कृष्ट <sup>उत्कृष्ट</sup> सम्पूर्ण 9 पूर्व देशोन 10 पूर्व	- परि.

	ब., प्रति., क.कु., नि. -	8 प्रवचन माता 8 प्रवचन माता 8 प्रवचन माता	10 पूर्व 14 पूर्व 14 पूर्व श्रुतव्यतिरिक्त	- सामा., छेदो., सू.सं. यथा.
	स्नातक	श्रुतव्यतिरिक्त		-
(8) तीर्थ	पु., ब., प्रति., क.कु., नि. स्ना.	तीर्थ तीर्थ, अतीर्थ-स्वयं बुद्ध व प्रत्येक बुद्ध		छेदो., परि. सामा., सू.सं., यथा.
(9) लिंग	-	द्रव्य स्वलिंगी	भाव स्वलिंगी	- परि.
	6 नियंत्र	स्व., अन्य., गृह..,	स्व.	4 चारित्र
(10) शरीर	पु., नि., स्ना., ब., प्रति., क.कु.	3 औ., तै., कार्मण 4 (3 + वै.) 5 (4 + आहा.)		परि., सू.सं., यथा. - सामा., छेदो.
(11) क्षेत्र	6 नियंत्र	सद्भाव 15 क.मू., 10 क.मू., 10 क.मू.,	संहरण ढाई द्वीप ढाई द्वीप -	सामा., सू.सं., यथा. छेदो. परिहार
<b>नोट :-</b> ब., प्रति., क.कु., सामा., छेदो., का संहरण हो सकता है, नि. स्ना., सू.सं., यथा. संहरण के समय नहीं होता है।				

(12) कालद्वारा	अवसर्पिणी	जन्म	सद्‌भाव	संहरण	अवसर्पिणी
	पु.	3,4	3,4,5	नहीं	परिहार
	नि., स्ना.	3,4	3,4,5	4 पलिभाग में	सू.सं., यथा
	ब., प्रति., क.कु.	3,4,5	3,4,5	4 पलिभाग में	सामा., छेदो.
	<b>उत्सर्पणी</b>				<b>उत्सर्पणी</b>
	6 नियंता	2,3,4	3,4	4 पलिभाग में (पु.परि. छोड़ के)	5 चारित्र
नो अव., नो उत्स. (महाविदेह)	समान काल में (4थे आरे में)			<b>4 पलिभाग में</b>	सामा., सू.सं., यथा.

(13) गति द्वारा	(देवता में)	गति	स्थिति	पदवी 5	(देवता में)
		ज.	उ.	ज.	आराधक हो तो
	पु.	1 देव	8 देव	पृ. पल	4 में से 1
	ब.प्रति.	1 देव	12 देव	पृ. पल	22 सा.
	क.कु.	1 देव	अनु.वि.	पृ. पल	33 सा.
	नि.	-	अनु.वि.		5 में से 1
	-		अनु.वि.	33 सा.	1 (अहमिन्द्र)
			या मोक्ष	33 सा.	सू.सं.
				या मोक्ष	यथा.
	स्ना.	मोक्ष	-	-	-

(14) संयम स्थान	नि., स्ना.	1	यथा.
	4 नियंता	असं.-अंस.	4 चारित्र

**नियंता**—सबसे कम नि., स्ना.—एक→पु.—असं.→ब.  
 असं.→प्रति.—असं.→क.कु.—असं.  
**संजया**—सबसे कम यथा.—एक→सू.सं.—असं.→परि.—  
 असं.—सामा., छेदो.→परस्पर तुल्य (असं.)

(15) निकष	पु.→पु., क.कु.-  ब., प्रति., नि. स्ना.  ब.→ब., प्रति., क.कु.	6 ठाण वडिया  अनंतगुण हीन  6 ठाण वडिया	सामा.—सामा. छेदो. परि.  सू.सं., यथा.  छेदो.—सामा., छेदो., परि.
	पु.  नि., स्ना.  प्रति.→ब., प्रति.,  क.कु.	अनंत गुण अधिक  अनंत गुण हीन  6 ठाण वडिया	अनंतगुण हीन  6 ठाण वडिया  अनंत गुण हीन
	पु.  नि., स्ना.  क.कु.→पु., ब., प्रति.  क.कु.	अनंत गुण अधिक  अनंत गुण हीन  6 ठाण वडिया	अनंत गुण अधिक  कदाचित् हीन, तुल्य, अधिक  अनंत गुण हीन
	नि., स्ना.  क.कु.→पु., ब., प्रति.  नि., स्ना.	अनंत गुण हीन  अनंत गुण हीन	सू.सं.—सामा., छेदो., परि.  सू.सं.  यथा.
			यथा.—4 चारित्र

	नि.→नि., स्ना.	तुल्य	तुल्य	यथा.
4	नियंठा	अनंत गुण अधिक		
	स्ना.→नि., स्ना.	तुल्य		-
4	नियंठा	अनंत गुण अधिक		
(16)	योग द्वार	1–5 नियंठा स्नातक	सयोगी सयोगी, अयोगी	1–4 चारित्र यथा.
(17)	उपयोग	6 नियंठा -	साकार–अनाकार साकार	4 चारित्र सूसं.
(18)	कषाय	पु., ब., प्रति., - क.कु. - नि. स्ना.	4 कषाय 4/3/2 4/3/2/1 1 उपशांत या क्षीण कषाय क्षीण कषाय	परि. सामा., छेदो. - सूसं. यथा -
(19)	लेश्या	पु., ब., प्रति. क.कु. नि. स्नातक	3 (तेजो., पद्म, शुक्ल) 6 लेश्या शुक्ल लेश्या सलेशी (शुक्ल), अलेशी	परिहार सामा., छेदो. सूसं. यथा.

(20) परिणाम

परिणाम

स्थिति

जगन्य उत्कृष्ट

पु., ब., प्रति., क.कु.	3 हीयमान वर्धमान	1 समय	अं.मु.	सामा., छेदो., परि.
	अवस्थित	1 समय	7 समय	
नि.	2 वर्धमान	अं.मु.	अं.मु.	-
	अवस्थित	1 समय	अं.मु.	-
स्ना.	2 वर्धमान	अं.मु.	अं.मु.	यथा.
	अवस्थित	अं.मु.	दे.क्रोड़ पूर्व वर्ष	
-	2 वर्धमान हीयमान	1 समय	अं.मु.	सू.सं.

(21) बंध

पु.

7

-

ब., प्रति.

7/8

सामा., छेदो.

क.कु .

7/8/6

-

-

6

सू.सं.

नि.

1 (वेदनीय)

-

स्ना.

1 या नहीं

यथा.

(22) वेदन (उदय)

पु., ब., प्रति., क.कु.

8

4 चारित्र

नि.

7

-

-

7/4

यथा.

स्ना.

4

-

(23) उदीरणा	पु.	6 (आयु, वेदनीय को छोड़)	-
	ब., प्रति.	7/8/6	सामा., छेदो., परि.
	क.कु.	7/8/6/5	-
	-	6/5	सू.सं.
	नि.	5/2	-
	-	5/2 तथा नहीं	यथा
	स्ना.	2 तथा नहीं	-
<hr/>			
(24) उवसंपद्धान (मार्गणा)	पु.	पु. को छोड़-क.कु., असंयम में जावे	-
	ब.	ब.-प्रति., क.कु., असंयम, संयमासंयम में जावे	-
	प्रति.	प्रति.-ब., क.कु., असंयम, संयमासंयम में जावे	-
	क.कु.	क.कु.-पु., ब., प्रति., नि., संयमा., असंयम	-
	नि.	नि.-क.कु., स्ना., असंयम में जावे	-
	स्ना.	स्ना.-मोक्ष में जावे	-
	-	सामा.-छेदो., सू.सं., असंयम, संयमासंयम	सा.मा.
	-	छेदो.-सामा., परि., सू.सं., असं., संयमासंयम	छेदो.
	-	परि.-छेदो., असंयम	परि.
	-	सू.सं.-यथा., छेदो., सामा., असंयम	सू.सं.
	-	यथा.-मोक्ष, सू.सं., असंयम (काल करे तो)	यथा.

(25) संज्ञा	पु., नि., स्ना. ब., प्रति., क.कु.,	नो सन्ना बहुता 4 संज्ञा/नो सन्ना बहुता	सू.सं., यथा. सामा., छेदो., परि.
(26) आहारक	5 नियंता स्ना.	आहारक 2 आहारक/अनाहारक	4 चास्त्रि यथा.
(27) भव (वह पर्याय	पु., नि. कितने भव में आ सकती है)	जघन्य 1 जघन्य 1 1 भव (उसी भव में मोक्ष)	उत्कृष्ट 3 उत्कृष्ट 8 -
(28) आकर्ष	एक भव आश्री जघन्य उत्कृष्ट	अनेक भव आश्री जघन्य उत्कृष्ट	
	पु. ब., प्रति., क.कु. -	1 3 पृ. 100 120	2 7 पृ. 1000 960
	नि. -	1 2 1 4	2 5 2 9
	स्नातक	मोक्ष	- -
(29) काल द्वार (स्थिति)	एक जीव आश्री जघन्य उत्कृष्ट	अनेक जीव आश्री जघन्य उत्कृष्ट	

	पु.	अं.मु.	अं.मु.	1 समय	अं.मु.	-
	ब., प्रति., क.कु.	1 समय	9 वर्ष कम क्रोड़ पूर्व	शाश्वत		सामा., यथा.
	-	1 समय	9 वर्ष कम क्रोड़ पूर्व	250 वर्ष 50 लाख क्रोड़ सागर	छेदो.	
	-	1 समय	29 वर्ष कम	142 वर्ष 58 वर्ष कम		परि.
			क्रोड़ पूर्व		क्रोड़ पूर्व	
	नि.	1 समय	अं.मु.	1 समय	अं.मु.	सू.सं.
	स्ना.	अं.मु.	9 वर्ष कम क्रोड़ पूर्व	शाश्वत		-
(30) अंतर द्वारा	पु.	अं.मु.	दे. अर्ध पु. परा.	1 समय	संख्यात वर्ष	-
(स्थिति)	ब., प्रति., क.कु.	अं.मु.	दे. अर्ध पु. परा.	नहीं		सामा., यथा.
	नि.	अं. मु.	दे. अर्ध पु. परा.	1 समय	6 माह	सू.सं.,
	-	अं. मु.	दे. अर्ध पु. परा.	63 ह.वर्ष दे. 18 को.को.सा.	छेदो.	
	-	अं. मु.	दे. अर्ध पु. परा.	84 ह.वर्ष दे. 18 को.को.सा.	परि.	
	स्ना.	नहीं		नहीं		-
(31) समुद्घात	पु.	3 (वेद, क., मारणांतिक)			परि.	
	ब. प्रति.	5 (3 + वै., तै.)			-	
	क.कु.	6 (5 + आहारक)			सामा., छेदो.	
	नि.	नहीं			सू.सं.	
	स्ना.	1 केवली			यथा.	

(32) अवगाहना	5 नियंता स्ना.	लोक के असंख्यातवे भाग में लोक के असं. भाग—अनेक असं भागों—समग्र लोक (शरीर, दण्ड, कपाट)	4 चारित्र यथा. (मथान)
(33) स्पर्शना	6 नियंता	अवगाहना से कुछ ज्यादा	5 चारित्र
(34) भाव (3)	4 नियंता नि. स्ना.	1 क्षायो. 2 (उपशम या क्षायिक) 1 क्षायिक	4 चारित्र यथा. -
(35) परिमाण	वर्तमान आश्री जघन्य उत्कृष्ट पु.	भूतकाल आश्री जघन्य उत्कृष्ट कदा. होते. कदा. नहीं 1,2,3 पृ. 100	
	ब., प्रति.	कदा. होते. कदा. नहीं 1,2,3 पृ. 100	परि. 1,2,3 पृ. 1000
	क.कु.	कदा. होते. कदा. नहीं 1,2,3 पृ. 1000	छेदो. क्रोड़ क्रोड़
	नि.	कदा. होते. कदा. नहीं 1,2,3 162	सामा. नियमा पृ. 1000 क्रोड़ सूसं.
			1,2,3 पृ. 100

		(54+108)	
		(उप.+क्षपक)	
स्ना.	कदा. होते. कदा. नहीं	नियमा पृ. क्रोड़	-
1,2,3	108		
-	कदा. होते. कदा. नहीं	नियमा पृ. करोड़	यथा.
1,2,3	162		

---

(36) अल्पबहुत्व	नियंता	सबसे कम-निग्रन्थ (पृ. 100)-पु.सं. गुणा (पृ. 1000)	-
		स्ना. (पृ. क्रोड़) सं. गुणा-ब. सं. गुणा (पृ. 100 क्रोड़)	-
		प्रति.सं.गुणा (पृ. 100 क्रोड़)-क.कु.सं.गुणा (पृ. 1000 क्रोड़)	-
-		सबसे कम सू.सं. (पृ. 100)-परि.सं.गुणा (पृ. 1000)	5 चारित्र
-		यथा.सं.गुणा (पृ. क्रोड़)-छेदो. सं. गुणा. (पृ. 100 क्रोड़)	
-		सामा. सं. गुणा. (पृ. 1000 क्रोड़)	

---

# सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

## के विविध सेवा सोपान

---

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

---

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

---

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद का संचालन

---

वीतराग ध्यान साधना केन्द्र का संचालन

---

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के  
रचनात्मक स्क्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र  
मंत्री

### सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997, 2571163

फैक्स : 0141-4068798 E-mail : sgpmandal@yahoo.in